विषय-सूची

भूमिका

धार्मिक सुधारकों में महात्मा बुद्ध का स्थान बहुत ऊँचा है। इनके उपदेश गिरी हुई आत्माओं को उठाने वाले हैं। नीच से नीच प्रकृति का पुरुष भी इनसे प्रभावित हुये बिना नहीं रहता। मनुष्य-समाज के सदाचार को सुधारने के लिये जितनी बातें चाहिये वह सभी महात्मा बुद्ध के उपदेशों में पाई जाती हैं।

महात्मा बुद्ध के उपदेशों की शैली बड़ी मनोरंजक है। इससे सर्व साधारण पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। महात्मा बुद्ध दार्शनिक भूल भुलइयों में किसी को नहीं डालते। बाल की खाल निकालना उनका उद्देश्य नहीं। वह छोटे छोटे उदाहरणों से ही लोगों का मन हर लेते हैं। जो कुछ कहते हैं उसके लिये बहुत अच्छा उदाहरण देते हैं। इसलिये उपदेश में सूखापन नहीं रहता। बात चित्त में गड़ जाती है। ऐसे छोटे, ऐसे सरल और ऐसे सर्व परिचित उदाहरण बहुत कम सुधारकों के उपदेश में मिलते हैं।

बौद्ध धर्म के विषय में भिन्न भिन्न लोगों के भिन्न भिन्न मत हैं। हिन्दू धर्म में बुद्ध भगवान को नास्तिक और बौद्ध धर्म को अनीश्वरवाद समझा जाता है। हिन्दू इतिहास में एक

समय ऐसा आ चुका है जब बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म के अनुयाइयों में बड़ा झगड़ा होता था। एक दूसरे के रुधिर के प्यासे थे। परन्तु बुद्ध भगवान के उपदेशों में ब्राह्मणों के इस विरोध का कारण नहीं मिलता। यह उपदेश तो इतने सार-गर्भित हैं कि किसी धर्म का अनुयायी इन पर आक्षेप नहीं कर सकता है।

प्रतीत होता है कि महात्मा बुद्ध ने अपने समय में वैदिक धर्मियों को तत्वहीन और रूढ़ियों से ग्रसित पाया। आडम्बर बहुत था और वास्तविक धार्मिक जीवन के चिह्न कम थे। वेदों के नाम से अनेक प्रकार की कुप्रथायें प्रचलित थीं। वेद मन्त्रों को पढ़ पढ़ अत्याचार किये जा रहे थे। जिन मन्त्रों में प्राण-रक्षा का वर्णन था उन्हीं को पढ़ कर पशुबध किया जाता था। जिस गाय को वेदों में "अघ्नया" न मारने योग्य कहा गया है उन्हीं वेद मंत्रों द्वारा मधुपर्क के समय गोवध होता था, जिन वेद मंत्रों में मनुष्य मात्र से प्रेम करने का उपदेश था-उन्हीं वेद मन्त्रों से उच्च जातियां नीच जातियों पर अत्याचार करती थीं। सच्चे ब्राह्मण और उपदेष्टा नहीं रहे थे। उनका स्थान झूठे पाखण्डी और आडम्बर-युक्त मनुष्यों ने ले लिया था। इनमें ब्राह्मणों की विद्या, उनका तप, उनका त्याग तो था नहीं। हां स्वार्थ, मतान्धता और अत्याचार अवश्य थे।

यज्ञ होते अवश्य थे परन्तु ऐसे यज्ञ जिनका वेदों मे विधान न था और जिनसे मनुष्य समाज को लाभ के बदले हानि होती थी। वेदों में यज्ञ के तीन लाभ बताये हैं:—

प्रजया पशुभिर्ब्रह्म वर्चसा।

अर्थात् (१) सन्तान की उन्नति। (२) पशुओं की उन्नति (३) और ब्रह्म-विद्या की प्राप्ति। महात्मा बुद्ध ने इन तीनों में से एक को भी न पाया। यज्ञों मे पशुहिंसा देख कर उनका मन पिघल गया। उन्होंने घर द्वार इसलिये छोड़ा था कि संसार के प्राणियों को दुख से छुड़ाने का मार्ग तलाश करें। उन्होंने आंख खोल कर देखा तो मनुष्यों को बुढ़ापे, रोग और मृत्यु से पीड़ित पाया। वह स्वयं जवान थे, तन्दुरुस्त थे, रोग रहित थे। राज-पुत्र होने के कारण सभी सुखों से सम्पन्न थे। परन्तु जब वह प्रजा को पीड़ित देखते तो उनका हृदय दग्ध हो जाता। वह पर-पीड़ा को सहन न कर सके और राज-पाठ छोड़ कर घर से चल दिये।

उनका विचार था कि उस समय के सन्यासियो से जिनको "श्रमण" कहते थे उनको सहायता मिलेगी। तप और धार्मिक क्रियायें उनके चित्त को शान्ति देंगी। परन्तु उनकी आशा पूरी न हुई। उन्होंने धर्म के स्थान में रूढ़ियों का प्रचार देखा। प्रेम और स्वार्थ-त्याग के स्थान में स्वार्थ का राज पाया। और शान्ति के स्थान में पाखण्ड और दुख का अनुभव किया। इसलिये

उन्होंने तुरन्त ही प्राचीन और प्रचलित मार्ग को त्याग दिया और नये धर्म का उपदेश करने लगे। जो उपदेश बुद्ध भगवान ने किया वह प्राचीन वैदिक धर्म के प्रतिकूल न था। जिस सदाचार की ओर वेदों का संकेत था उसी की ओर महात्मा बुद्ध भी संकेत करते थे परन्तु उस समय के आडम्बरी धर्म-धुरंधरों को यह बात प्रिय न थी। उनकी पूजा अर्चन में अड़चन पड़ती थी। उनके पाखण्ड की पोल खुलती थी। अतः वह स्वभावतः बुद्ध भगवान से विरुद्ध हो गये।

यह विरोध आगे चल कर बढ़ता गया। इधर हिन्दुओं का विरोध, उधर अनुयायियों में मत भेद! इस विरोध का एक कारण और हुआ। साधारण धर्म के साथ बुद्ध के अनुयायियों ने दार्शनिक समस्याओं को भी मिला लिया। जो बात बुद्ध भगवान ने साधारण उपदेश की रीति से की थी उस पर उनके अनुयायियों ने टीका टिप्पणी की। बाल की खाल निकलने लगी। अनेक प्रकार के वाद प्रचलित हो गये। वेदों के सत्यार्थ की खोज न करके उनसे द्वेष होने लगा। वैदिक धर्म की अच्छी बातों से भी घृणा उत्पन्न की गई। बुद्ध भगवान ने केवल यह कहा था कि "जीवन क्षण भंगुर है। संसार अनित्य है इसलिये लोगों को विषयों में लिप्त न होना चाहिये"। साधारणतया यह बात सर्वथा ठीक थी। सभी जानते हैं कि संसार अमर नहीं। यहां की जितनी वस्तुयें हैं सभी नाशवान हैं। प्रायः लोगों के अधर्म में फँसने का यही कारण होता है

कि वे इस संसार को "अजर अमर बन" समझ लेते हैं। परलोक पर बिलकुल दृष्टि न रहती। तात्कालिक सुख ही जीवन का उद्देश हो जाता है। वस्तुतः सब पापों का मूल यही भूल है। चोर चोरी क्यों करता है? डाकू डाका क्यों डालता है? एक पुरुष दूसरे पर क्यों अत्याचार करता है? इसलिये कि यह लोग भविष्य या परलोक की परवाह नहीं करते।

अब तो आराम से गुजरती है।
आक़बत की ख़बर ख़ुदा जाने॥

इसी भूल को दूर करने के लिये महात्मा बुद्ध ने लोगों से कहा कि संसार अनित्य है। वर्तमानकाल अभी भूतकाल में परिणत हो जायगा। अतः इसमें लिप्त न रहो, आगे का भी ध्यान रक्खो। जब वह उपदेश देते थे तो संसार की अनित्यता के नाम पर अपील करते थे। कभी कभी असावधान रोगी को देख कर डाक्टर को बताना पड़ता है कि "रोग भयानक है इससे सावधान रहो।" बुद्ध ने सच्चे डाक्टर की भांति इस आवश्यकता का अनुभव किया और लोगों को इससे सचेत किया, परन्तु जो गोली रोगियों को विशेष अवसर पर देने के लिये उपयुक्त थी उसी को तन्दुरुस्त लोगों ने खाना आरम्भ किया और उसका परिणाम उलटा हुआ। महात्मा बुद्ध के उपदेशों ने सहस्रों और लाखों सदाचारी भिक्षु उत्पन्न कर दिये, जिन्होंने अहिंसा, दया, शुद्ध आचार और पवित्र जीवन के मिशन को लंका, ब्रह्मदेश, चीन,

जापान, पश्चिमी एशिया आदि आदि समस्त भूमण्डल पर पहुँचा दिया। स्वार्थ-त्याग तथा विचारों और जीवन की पवित्रता हर एक भिक्षु का मुख्य उद्देश्य था। इस बात का एक छोटा सा उदाहरण यह है कि एक बार एक भिक्षु ने भिक्षा मांगते समय एक युवती लड़की को देखा, जो उसे भीख देने आई थी। लड़की के सौन्दर्य्य ने भिक्षु के मन को विचलित कर दिया। भिक्षु ने अपने इस धर्मपतन के पुरश्चरण-रूप में चाकू से अपनी आंख निकाल ली। यह सदाचार की पराकाष्ठा थी। यह भाव बुद्ध भगवान के उपदेशों ने ही उत्पन्न किये थे। किसी धार्मिक सुधारक के शिष्यों में ऐसे उच्च आदर्श देखने में नहीं आते. आन्तरिक जीवन की पवित्रता के इससे अधिक प्रमाण मिल ही नहीं सकते।

परन्तु जब बौद्ध धर्म का आधिक्य हुआ और आधिक्य के साथ ऊपरी आडम्बर भी आने आरम्भ हुये तो वह मौलिक पवित्रता कम हो गई। "संसार की अनित्यता" ने शून्यवाद, बाह्य-शून्यवाद, आन्तरिक शून्यवाद आदि भिन्न भिन्न वादों को उत्पन्न कर दिया, लोग दार्शनिक भूल भुलइयों में पड़ गये। किसी ने कहा "यह बाह्य संसार जो दीखता है कुछ नहीं", किसी ने कहा "जो कुछ है बाहर ही है भीतर कुछ नहीं"। किसी ने कहा "न बाहर है न भीतर यह सब शून्य है"। इस प्रकार संसार की जिस अनित्यता के नाम पर अपील करके महात्मा बुद्ध लोगों को

सदाचारी बनाते थे वही अनित्यता सदाचार के लिये घातक हो गई। यदि यह सब शून्य है तो चोरी क्या और व्यभिचार क्या? पाप क्या? और पुण्य क्या? यदि बाह्य जगत है ही नहीं तो कौन मरता है? और कौन मारता है? फिर दया कैसी? और हिंसा कैसी? यही कारण है कि जो बुद्ध चींटी को मारना तक पाप समझता है उसी के चीन जापान ब्रह्मा आदि के अनुयायी किसी पशु के मांस को भी नहीं छोड़ते।

हिन्दू-धर्म के आडम्बरों ने बौद्ध-धर्म को उत्पन्न किया। परन्तु बौद्ध-धर्म के आडम्बरों ने हिन्दू-धर्म का उत्थान किया। जिस प्रकार हिन्दू-धर्म की कुरीतियों से तंग आकर लोगों ने बौद्ध धर्म का स्वागत किया उसी प्रकार बौद्ध धर्म में कुरीतियों के प्रवेश ने लोगों को उस धर्म से विमुख कर दिया और श्री गौड़पाद तथा श्रीशंकर आदि अनेक आचार्यों ने वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करके बौद्ध धर्म को भारतवर्ष से निकाल दिया। यदि महात्मा बुद्ध के सदुपदेशों के साथ पीछे के बौद्ध दार्शनिकों की भूल भुलाइयां न मिल जातीं तो इसमें संशय नहीं कि बुद्ध भगवान के उपदेश हिन्दू धर्म को बहुत कुछ गिरने से बचा लेते। परन्तु बौद्धों के असम्बद्ध तथा परस्पर विरुद्ध दार्शनिक सिद्धान्तों ने न केवल बौद्ध धर्म को ही नष्ट किया किन्तु हिन्दू धर्म में अर्द्ध शून्यवाद को प्रवेश करके वैदिक धर्म की स्वच्छता को लुप्त-प्राय कर दिया। शंकर स्वामी का विवर्त्तवाद तथा मायावाद और बौद्ध माध्यमिको

के शून्यवाद का उन्नत रूप तथा बौद्ध योगाचारों के बाह्य शून्यवाद का परिवर्त्तित रूप है। शंकर स्वामी आदि ने वेदों की प्रमाणिकता अवश्य सिद्ध की परन्तु इसके साथ ही वेदों के जीवन-वर्द्धक और शक्ति-उत्पादक सिद्धान्तों को छिपा लिया। शंकर स्वामी ने असली असली सचाई और व्यावहारिक सचाई के बीच में एक भेदक भित्ति खींच दी। परन्तु इसने लोगों के जोश को और ठण्डा कर दिया और सचाई की वह प्रेरक शक्ति जिसकी प्रेरणा से लोक सांसारिक उन्नति करते हैं जाती रही। यदि व्यावहारिक सचाई असली सचाई नहीं है, यदि यह सब भुलावा मात्र है तो व्यावहारिक संस्थाओं की रक्षा के लिये क्यों परिश्रम किया जाय? इस प्रकार देश और जाति को सिद्धान्तों के परिवर्त्तन से भी उतना लाभ नहीं हुआ जितना होना चाहिये था।

बुद्ध भगवान के उपदेशों में कुछ शोकवाद की झलक पाई जाती है। संसार की असारता पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया है। जीवन के दुःखों का वर्णन करने में अत्युक्ति से काम लिया गया है। जीवन के सुखों के साथ न्याय नहीं किया गया। इन सुखों के कारण मनुष्यों की कितनी उन्नति होती है इस पर पूरा विचार नहीं किया गया। परन्तु शायद यह सबबातें उस समय के लिये आवश्यक थीं। बुद्ध भगवान के अधिकतर उपदेश तो भिक्षुओं के प्रति थे। भिक्षुओं का मुख्य मार्ग निवृत्ति मार्ग है। गृहस्थों को प्रवृत्ति का उपदेश

करना चाहिये। निवृत्ति मार्ग पर चलने वाले गृहस्थ और प्रवृत्ति मार्ग पर चलने वाले सन्यासी दोनों ही अपने और पराये नाश का कारण होते हैं। इस लिये कुछ आश्चर्य नहीं यदि बुद्ध ने निवृत्ति मार्ग पर बल दिया। शायद यही कारण था कि त्यागी भिक्षुओं का प्रबल दल तैय्यार हो सका।

परन्तु प्रवृत्ति और निवृत्ति में बहुत बड़ी भेदक-भित्ति नहीं है। केवल दृष्टि कोण का भेद है। न हम सर्वथा निवृत्त ही हो सकते हैं न सर्वथा प्रवृत्त। सन्यासी भी कुछ न कुछ प्रवृत्ति रक्खेगा ही और गृहस्थ का जीवन भी बिना कुछ न कुछ निवृत्ति के पशुवत् हो जायगा। सर्वथा प्रवृत्तिहीन सन्यासी खपुष्प के समान असम्भव है और सर्वथा निवृत्तिहीन गृहस्थ कुत्ते बिल्ली के समान पशु हैं। इसलिये प्रवृत्ति और निवृत्ति को उचित कक्षाओं के भीतर रखने से ही कल्याण हो सकता है। महात्मा बुद्ध के उपदेशों को पढ़ने से गृहस्थों को भी बहुत कुछ लाभ हो सकता है। सन्यासियों के लिये तो यह एक अमूल्य रत्न है।

धम्मपद कब लिखा गया और उसमें बुद्ध के निज शब्दों का कितना अंश है यह कहना कठिन है। महात्मा बुद्ध ने कोई पुस्तक नहीं लिखी थी, वह भिक्षुओं तथा अन्य धर्मपिपासकों में नित्य प्रति उपदेश दिया करते थे, इन्हीं का पीछे से संग्रह कर लिया गया। धम्मपद का संग्रह बुद्ध की मृत्यु के २३६ वर्ष पीछे पाटलि-पुत्र की वृहत् सभा में किया गया था जो सम्राट अशोक के

समय में बुलाई गई थी। यह भी कहना कठिन है कि बुद्ध ने किस भाषा में उपदेश दिया था। पाली शायद उस प्रकृत का कुछ परिवर्तित रूप है जिसको महात्मा बुद्ध बोलते थे। पाली में संस्कृत शब्द बहुत हैं. यों तो भारतवर्ष की सभी भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव है. जो प्राकृत बुद्ध के समय में बोली जाती थी वह भी संस्कृत से ही निकली थी और महात्मा बुद्ध ने सर्वसाधारण के समझाने में सुगमता हो इसलिये इसका अवलम्बन किया था। परन्तु भारतवर्ष की भाषाओं में एक विशेष प्रवृत्ति देखी जाती है। पहले तो शुद्ध संस्कृत शब्द बिगड़ कर सर्वसाधारण की भाषा बन जाते हैं। परन्तु जब कोई सुधारक इसी भाषा को साहित्य के लिये अपना लेता है तो इसमें संस्कृत के शुद्ध शब्दों का प्रवेश होना आरम्भ होता है। इस प्रकार चाहे समय में कितना ही परिवर्तन क्यों न होजाय संस्कृत भाषा का प्रभाव ज्यों का त्यों रहता है। बिगड़ी हुई सार्व-जनिक भाषा को ही प्राकृत कहते हैं। यह प्राकृत संस्कृत के चारों ओर घूमा करती है। आजकल हिन्दी भाषा को ही देखिये, तुलसीदास की भाषा में संस्कृत के इतने शुद्ध रूप नहीं पाये जाते जितने आजकल की हिन्दी में हैं। यही हाल पाली का होगया। पाली बौद्धों की साहित्य की भाषा थी इसीलिये इसमें संस्कृत शब्दों का आधिक्य है। कुछ बौद्धों ने (जैसे अश्वघोष आदि) तो अपने ग्रन्थ शुद्ध संस्कृत में लिखने आरम्भ कर दिये थे। धम्मपद में संस्कृत शब्दों का

इतना आधिक्य है कि कहीं कहीं तो क्रिया या सर्वनाम को छोड़ कर सभी शब्द संस्कृत के हैं। कुछ शब्दों में केवल नाम मात्र का भेद है; पाली में ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ऐ, औ, श, ष और विसर्ग का सर्वथा अभाव है। ऋ के स्थान में रि, श के स्थान स और ष के स्थान में ख बहुत आता है। अर्द्ध शिक्षित पुराने ढङ्ग के पण्डितों की बोली में आजकल भी यह लक्षण पाये जाते हैं। यह प्राचीन प्राकृत का ही प्रभाव है।

महात्मा बुद्ध का प्रयोजन केवल सुधार करना था। वैदिक सभ्यता के स्थान में नई सभ्यता लाना उनका प्रयोजन न था। इसलिये यद्यपि बौद्धों ने वेदों का तिरस्कार किया और उनको अप्रमाणित समझा तथापि उन्होंने वैदिक संस्कृति या सभ्यता से नाता न तोड़ा। सामाजिक संगठन का ढांचा ज्यों का त्यों उपस्थित था। धम्मपद के ब्राह्मण वर्ग को पढ़ने से विदित होता है कि जिसको आजकल ब्राह्म-धर्म कहते हैं उसका विरोध बुद्ध को अभीष्ट न था। वह उस धर्म की बुराइयों को दूर करना चाहते थे। डाक्टर रोग दूर करता है, रोगी को नष्ट करना नहीं चाहता। महात्मा बुद्ध ने यह नहीं कहा कि ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ नहीं हैं। उन्होंने केवल यह बताया कि ब्राह्मण कौन है? प्रतीत होता है कि आजकल की भांति बुद्ध के समय में भी पाखण्डी ब्राह्मणों का ज़ोर था। लोग केवल जन्म से ही अपने को ब्राह्मण कहते थे। गुणों पर कुछ ध्यान न था। इसी लिये बुद्ध को कहना पड़ा :—

न जटाहि न गोत्तेन न जच्चा होति ब्राह्मणो ।

(धम्मपद २६३)

अर्थात् जटा, गोत्र या जाति से कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता ।

किन्तु

यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुखी सो च ब्राह्मणो ।

(धम्मपद २६३)

सच्चा ब्राह्मण वह है जिसमें सत्य और धर्म पाये जावें । यही कारण था कि बुद्ध के शिष्यों या बौद्धधर्म के प्रचारकों के लिये जाति या गोत्र की शर्त न थी । नीच से नीच पुरुष भी योग्यता प्राप्त करके उच्च से उच्च हो सकते थे । छूत छात या स्पृश्यता और अस्पृश्यता के लिये कोई स्थान न था उनकी शिक्षा तुलसीदास की इस सूक्ति से मिलती थी :—

कर्म्म प्रधान विश्व कर राखा ।

जो जस करै सो तस फल चाखा ॥

अन्य बातों में भी महात्मा बुद्ध के उपदेश वैदिकधर्म के ग्रन्थो से मिलते जुलते हैं । बहुत से तो महाभारत, गीता, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में ज्यों के त्यों पाये जाते हैं ।

अब हम इन उपदेशों का सार लिखते हैं । धम्मपद में २६ वर्ग और ४२३ श्लोक हैं ।

(१) पहला यमकवर्ग है ।

इसमें द्वन्द्वों का वर्णन है ॥

पाप और पुण्य दोनों मनुष्य के साथ रहते हैं। पापों से कष्ट होता है और पुण्यों से सुख। पाप पापी को इस प्रकार कष्ट देते हैं जिस प्रकार बैलगाड़ी का पहिया बैल को। ज्यों ज्यों बैल भागता है त्यों त्यों वह पहिया भी उसके पीछे पीछे दौड़ता है। इसी प्रकार जहाँ जहाँ पापी जाता है पाप भी उसको दुःख देने के लिये उसके साथ रहता है। पुण्य की उपमा छाया से दी गई है। छाया मनुष्य के साथ तो रहती है परन्तु कष्ट नहीं देती। इसी प्रकार पुण्य मनुष्य के साथ तो रहता है परन्तु उससे पुण्यात्मा पुरुष को कुछ भी कष्ट नहीं होता।

वैर से वैर कभी नहीं जाता। वैर के बदले मित्रता करने से वैर नष्ट हो जाता है। जो पुरुष दूसरों की, की हुई बुराइयों का चिन्तन करता रहता है उसका हृदय वैर भाव से पूरित रहता है। इसलिये यदि कोई तुम्हारे साथ बुराई करे भी उसे भूल जाओ।

जिस प्रकार कमज़ोर वृक्ष को आंधी उखाड़ डालती है परन्तु पहाड़ पर उसका वश नहीं चलता इसी प्रकार विषयों में लिप्त पुरुष को विषय सताते हैं और नियम से आचार विचार करने वाले पुरुष को विषय नहीं सताते।

केवल उसी पुरुष को सन्यासी होना चाहिए जो सार असार को समझता, सत्यप्रिय और दोषरहित है। केवल गेरुये वस्त्र पहिनने से कुछ नहीं होता।

जिस प्रकार वर्षा के पानी से रक्षा करने के लिये अच्छी छत चाहिये इसी प्रकार राग द्वेष से बचने के लिये उत्तम शिक्षा की आवश्यकता है।

पापी को इस लोक और परलोक दोनों में कष्ट होता है और पुण्यात्मा दोनों लोकों में सुख पाता है।

जिस प्रकार गांव का ग्वाला दूसरों की गायों को तो गिनता है परन्तु उसकी एक गाय भी गाय नहीं होती। इसी प्रकार बहुत बातें करनेवाले पुरुष को कुछ भी लाभ नहीं होता। लाभ तो काम करने से ही होता है।

(२) दूसरा अप्रमाद वर्ग है।

इसमें प्रमाद के दोष गिनाये गये हैं।

प्रमाद से मृत्यु होती है और प्रमाद के छोड़ने से ही निर्वाण मिलता है, समस्त उन्नतियों का हेतु अप्रमाद है। प्रमादी को संसार में कुछ नहीं प्राप्त होता, जिसमें प्रमाद नहीं। जो जागता है। जो अपने उद्देश्य की पूर्ति में कटिबद्ध है। जो अपने को वश मे करके अपनी समस्त शक्तियों से काम ले रहा है, वह उन्नति के शिखर पर पहुंच जाता है। प्रमादी लोग नीचे पड़े हुये उसको ऐसे मालूम होते हैं जैसे पर्वत पर चढ़े हुये मनुष्य को नीचे स्थल में चलते हुये पुरुष छोटे छोटे मालूम होते हैं।

(३) तीसरा चित्त वर्ग है।

इसमें मन की चंचलता और उसको वश में रखने के लाभों का वर्णन है। मन की चंचलता प्रसिद्ध है। उसकी गति विचित्र

है। चंचल मन विषयों में फँसा रहता है और मार उस पर राज्य करता है। परन्तु सुशिक्षित और वशीभूत मन से ही मनुष्य उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। संसार में कोई शत्रु इतना भयानक और इतना हानिकारक नहीं जितना अशिक्षित मन और माता-पिता आदि कोई ऐसे मित्र नहीं हो सकते जैसा वशीभूत मन।

(४) चौथा पुष्प वर्ग है।

इसमें फूल की उपमा देकर कई उपदेश वर्णन किये गये है।

जिस प्रकार योग्य माली फूलों को क्रम-पूर्वक रखकर माला बनाता है इसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष धर्म प्रतिपादक श्लोक को चुनता है।

मार अर्थात् कामदेव के फूल रूपी बाणों से बचना चाहिये।

जैसे सोते हुये गांव को नदी की बाढ़ बहा ले जाती है उसी प्रकार जो पुरुष सुखरूपी फूलों को चुनता रहता है उसे मृत्यु पकड़ लेती है।

जिस प्रकार भौंरा फूल के रस को चूस लेता है परन्तु उसके सौन्दर्य को नष्ट नहीं करता इसी प्रकार भिक्षुकों को घर घर से खाना तो ले लेना चाहिये परन्तु किसी को हानि नहीं पहुंचाना चाहिये।

जैसे कुछ सुन्दर फूल गन्ध रहित होते हैं इसी प्रकार वह पुरुष है जो कहता है पर करता नहीं।

जैसे अनेक फूलों से माला तैय्यार होती है इसी प्रकार अच्छे कर्मों से जीवन बनता है।

किसी फूल की सुगन्ध वायु के झोंके के विरुद्ध नहीं जाती परन्तु पवित्र आत्मा के सुकृतों की गन्ध वायु के विरुद्ध भी चलती है।

किसी फूल की सुगन्ध इतनी अच्छी नहीं होती जितनी पुण्य की।

जैसे कूड़े के ऊपर भी फूल उग कर अच्छा मालूम होता है इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष अज्ञानी मनुष्यों के बीच में अच्छा मालूम होता है।

(५) पांचवां बाल वर्ग है।

इसमें मूर्खों के लक्षण और उनसे बचने के उपाय हैं।

जो धर्म से विहीन हैं वह मूर्ख हैं, कभी मूर्खों का साथ न करो। मूर्खों की अपेक्षा अकेला रहना अच्छा है।

जो मूर्ख है वह अपने ही ऊपर आधिपत्य नहीं रखता, पुत्र स्त्री या धन पर कैसे रख सकता है?

जो मूर्ख अपनी मूर्खता को जानता है वह इतना मूर्ख नहीं है। सच्चा मूर्ख वह है जो मूर्ख होने पर भी अपने को बुद्धिमान समझता है।

जैसे चम्मच को कभी दाल का मजा नहीं मिलता इसी प्रकार मूर्ख ज्ञानियों के साथ रहकर भी सचाई को नहीं पा सकता।

जैसे जीभ थोड़ी ही देर में दाल के मजे को ले लेती है इसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष ज्ञानियों का साथ करते ही ज्ञानी हो जाता है।

मूर्ख अपने ही परम शत्रु हैं। इतनी शत्रुता उनके साथ कौन करेगा जितनी उनकी मूर्खता करती है ?

वह काम कभी अच्छा नहीं कहा जा सकता जिसको करने के पश्चात् पछताना पड़े।

बुरा कर्म उसी समय तक अच्छा मालूम होता है जब तक उसका बुरा फल प्रकट नहीं होता। अन्त को तो अवश्य दुख होता है।

जैसे दूध तुरन्त जमकर दही हो जाता है इसी प्रकार बुरा कर्म तुरन्त ही फल नहीं देता। बुरा कर्म वह झुलसती हुई आग है जो मनुष्यों को जलाकर छोड़ती है।

यश प्राप्ति का मार्ग और है और निर्वाण का मार्ग और। इसलिये बुद्धिमान् भिक्षुओं को यश प्राप्ति की परवाह न करनी चाहिये।

(६) छठा पण्डित-वर्ग है।

इसमें बुद्धिमानों के लक्षण दिये हैं।

पण्डित वह है जो अपने दोष दिखानेवाले से अप्रसन्न नहीं होता।

पण्डितों का साथ करना चाहिये और मूर्खों से अलग रहना चाहिये।

बुद्धिमान् लोग धर्म को जानने के लिये उत्सुक रहते हैं। तीर बनानेवाला तीर को झुकाता है। बढ़ई लकड़ी को झुकाता

है। कुंआ खोदनेवाला पानी की धार को झुकाता है। पण्डित अपने मन को झुकाता है।

चैसे चट्टान वायु से नहीं हिल सकती इसी प्रकार पण्डित कीर्ति या अपकीर्ति की परवाह नहीं करता।

बुद्धिमान् वही है जो अधर्म से अपना हित नहीं करता। न लड़के, स्त्री आदि के लिये कोई अनुचित कार्य्य करता है।

मौत को वही पार कर सकते हैं जो बुद्धिमान् हैं। मूर्ख तो किनारे पर ही गोता खाते रहते हैं।

पण्डित को ममत्व छोड़कर एकान्त-वास करना चाहिये। वास्तविक पण्डित वही है जो विषयों में लिप्त न हो, मनको वश में रखे और सम्यक् ज्ञान प्राप्त करे।

(७) सातवाँ अर्हत्-वर्ग है।

अर्हत वह पुरुष है जो संसार की क्षणभंगुरता को समझ लेता है। और समस्त वस्तुओं से ममता त्याग कर समस्त बन्धनों को तोड़ देता है। जिस प्रकार चतुर रथवान घोड़ों को वश में रखता है इसी प्रकार अर्हत अपनी इन्द्रियों को वश में रखता है। वह जीवन मुक्त होता है। मृत्यु के पीछे उसको जन्म नहीं लेना पड़ता। उसे निर्वाण की उपलब्धि होजाती है। वह उन स्थानों में भी सुख से रह सकता है जहाँ अन्य साधारण मनुष्यों को सुख नहीं मिल सकता।

(८) आठवाँ सहस्र-वर्ग [illegible]।

इसमें सहस्र शब्द बहुत आया है।

शान्तिप्रद एक बात हजारों बातों से अच्छी। शान्तिदायक एक गीत हजारों गीतों से अच्छा। सैकड़ों निरर्थक श्लोकों से एक आशय पूर्ण श्लोक अच्छा। सहस्रों को जीतने की अपेक्षा अपने को जीतना अच्छा। हजारों रुपये खर्च करके सैकड़ों वर्ष यज्ञ करने से तो एक आत्मदमन करनेवाले पुरुष का सत्कार करना अच्छा।

जो वृद्ध पुरुषों का सत्कार करता है उसकी आयु, सौन्दर्य्य, सुख और शक्ति बढ़ते हैं।

सदाचारी का एक दिन दुष्ट के सैकड़ों वर्ष से अच्छा। प्रमाद के सैकड़ों वर्षों से अप्रमादी का एक दिन अच्छा। जो वस्तुओं के आदि अन्त को जानता है उसका एक दिन का जीवन मूर्खों के हजार वर्ष के जीवन से अच्छा।

निर्वाण को दृष्टि में रखने का एक दिन भटकते हुये जीवन के सैकड़ों वर्षों से अच्छा। एक दिन धर्म जानना सैकड़ों वर्ष की मूर्खता से अच्छा।

(९) नवाँ पाप-वर्ग है।

पुण्य में मन लगाने से ही पाप से बच सकते हो। यदि कोई पाप हो भी जाय तो उसे दुहराओ मत, नहीं तो पाप का ढेर हो जायगा?

पुण्य को निरन्तर करते रहो।

पापी उसी समय तक सुखी है जब तक उसके पापों का फल उदय नहीं होता।

पुण्यात्मा उसी समय तक दुःखी है जब तक उसके पुण्यों का फल उदय नहीं होता।

पाप को थोड़ा मत समझो। एक एक बूंद से घड़ा भर जाता है और एक एक पाप से जीवन नष्ट हो जाता है।

पुण्य को भी थोड़ा मत समझो। करते ही जाओ। एक एक बूंद से घड़ा भरता है और एक एक सुकृत से जीवन सफल हो जाता है।

जैसे एक धनी व्यापारी डर के मार्ग पर नहीं चलता या जैसे जीने की इच्छा करनेवाला विष नहीं खाता इसी प्रकार मनुष्य को पाप से बचना चाहिये।

वही मनुष्य विष को छू सकता है जिसके हाथ में घाव नहीं है। पाप उसको नहीं सताता जिसने कोई पाप नहीं किया।

जैसे वायु में धूल फेंकने से अपने ही ऊपर आती है इसी प्रकार अच्छे आदमी को दोष लगाने से अपने को ही दोष लगता है।

कुछ आदमी फिर जन्म लेते हैं। पापी नरक को जाते हैं। पुण्यात्मा स्वर्ग को। जो इच्छा रहित हैं उन्हें निर्वाण मिलता है।

न आकाश में, न समुद्र के मध्य में, न पहाड़ पर कोई ऐसा स्थान है जहाँ पापी अपने पाप से बच सके।

न आकाश में, न समुद्र के मध्य में, न पहाड़ पर कोई ऐसा स्थान है जहाँ प्राणी मृत्यु से बच सके।

(१०) दसवाँ दण्ड-वर्ग है।

दण्ड से सब भागते हैं। मौत से सब डरते हैं। जीवन सब को प्रिय है। सब में तुम्हारी ही सी जान है। इसलिये किसी की हत्या मत करो।

जो अपने सुख के लिये दूसरों की हत्या करता है उसे मृत्यु के पीछे सुख न मिलेगा।

किसी से कुवचन न बोलो। वह भी वैसा ही बोलेगा। और लड़ाई होने लगेगी।

जैसे ग्वाला गौओं को हांकता है इसी प्रकार जरा और मरण मनुष्य को हांकते हैं।

मूर्ख यह नहीं जानता कि मैं कब पाप करता हूँ। दुष्ट अपनी दुष्टता की आग में जल जाता है।

जो निर्दोष मनुष्य को सताता है वह इन दस दशाओं को प्राप्त होगा। (१) वेदना (२) हानि (३) शरीर का भेदन या काटना (४) रोग (५) चित्त विक्षेप (६) राजदण्ड (७) दारुण अपयश (८) जाति-बहिष्कार (९) धन का क्षय (१०) घर जलना।

जिसने वासनाओं को न मारा वह चाहे नग्न रहे, चाहे जटा बढ़ावे, चाहे धूल रमावे, चाहे व्रत रक्खे, चाहे भूमि पर लेटे, चाहे आसन करे, उसको किसी से कुछ लाभ नहीं हो सकता।

वही ब्राह्मण है, वही श्रमण है, वही भिक्षु है जो चाहे चमकीले कपड़े पहने किन्तु शान्त और पवित्र रहे और किसी को न सतावे।

जैसे शिक्षित घोड़ा कोड़ा खाकर ठीक मार्ग पर चलता है इसी प्रकार तू भी श्रद्धा और पुण्य का जीवन व्यतीत कर, ध्यान कर और धर्म सीख।

(११) ग्यारहवाँ जरा-वर्ग है।

इस में बुढ़ापे का वर्णन है। संसार में बुढ़ापा हर एक वस्तु को सताता है। इससे सभी पीड़ित हैं। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य को संसार के सुखों में नहीं फँसना चाहिये।

(१२) बारहवाँ आत्म-वर्ग है।

जो अपने को दमन नहीं करता वह दूसरों को वश में नहीं रख सकता। मनुष्य को अन्य से सहायता नहीं मिल सकती। अपने ही किये से काम चलता है।

बुरे कर्म आसान हैं और अच्छे काम कठिन।

मनुष्य को अपना कर्त्तव्य आप पालना चाहिये। पवित्रता और मलीनता मन की है। कौन किसको शुद्ध कर सकता है ?

(१३) तेरहवां लोक-वर्ग है।

संसार में मन न लगाओ। अच्छे पुरुष इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहते हैं। पुण्य करो। पाप से बचो।

जो इस संसार को बुलबुले या मृग तृष्णा के समान समझता है उसको मृत्यु नहीं सताती।

जिसने आलस्य छोड़ दिया वह बादलों में से निकले हुये चन्द्रमा के समान संसार को प्रकाशित कर देता है।

विरले ही संसार में नहीं फँसते, विरले पक्षी ही जाल से बचते है। विरले ही स्वर्ग को जाते हैं।

हंस अपनी शक्ति से आकाश में उड़ते हैं। इसी प्रकार मार अर्थात् कामदेव को जीतनेवाले इस लोक मे विचरते हैं।

जो धर्म से विमुख हुआ, झूठ बोलता है और परलोक की हँसी करता है वह क्या कुछ पाप न करेगा?

कंजूस देवलोक को नहीं जा सकते। मूर्ख दान की महिमा का तिरस्कार करते हैं, बुद्धिमान दान के द्वारा सुख पूर्वक परलोक को जाते हैं।

इस लोक का राज अच्छा। स्वर्ग को जाना अच्छा। सब लोकों पर राज करना अच्छा। परन्तु इससे भी अच्छा है पवित्र जीवन।

(१४) चौदहवां बुद्ध-वर्ग है।

बुद्ध होना बहुत कठिन है। वही बुद्ध है जिसने अपनी समस्त वासनाओं को त्याग दिया है। और जिसे एकान्तवास में परम सुख प्राप्त होता है। ऐसे पुरुष पर देवता भी डाह करते हैं।

बुद्धों का यही शासन अर्थात् उपदेश है कि सब पापों से बचो, अच्छे विचार रक्खो और चित्त को शुद्ध करो। शान्ति ही परमतप है, तितिक्षा ही परम निर्वाण है। दूसरों को हानि पहुंचानेवाला साधु नहीं हो सकता। न दूसरों को मारनेवाला श्रमण।

बुद्धों का उपदेश यह है कि अपवाद न करो, किसी को न मारो, इन्द्रियों को वश में रक्खो, कम खाओ, एकान्तवास करो और विचारों को शुद्ध रक्खो।

सोने की वर्षा से कामनायें तृप्त नहीं होतीं। ज्ञानी पुरुष वही है जो कामनाओं की हानियों को समझता है। कामनाओं को तृप्त करने का उद्योग न करो। उनके नष्ट करने का उद्योग करो।

नदी पर्वत आदि की शरण में आने से दुखों से छुटकारा नहीं मिलता। बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लेने से ही कल्याण होता है।

चार सचाइयां यह हैं (१) दुख (२) दुख का कारण (३) दुख की निवृत्ति (४) श्रेष्ठ आठ मार्ग।

(१५) पंद्रहवां सुख-वर्ग है।

इसमें लिखा है कि मनुष्य को बिना कुछ पास हुये भी आनन्द से रहना चाहिये। राग के समान कोई आग नहीं। द्वेष के समान कोई हरानेवाला पासा नहीं, शरीर के समान कोई दुख नहीं, शान्ति के समान कोई सुख नहीं।

आरोग्य परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वासी पुरुष ही परम बन्धु है, निर्वाण ही परमसुख है। विवेक और उपशम के रस को पीकर मनुष्य निर्भय और निष्पाप हो जाता है।

मूर्खों की संगति शत्रुओं की संगति के समान है और धीर पुरुषों की सम्बन्धियों के सदृश। इस लिये धीर आर्यों का संग करो। जैसे नक्षत्रों के पथ पर चन्द्रमा चलता है, उसी प्रकार सत्पुरुषों के मार्ग पर चलना चाहिये।

(१६) सोलहवां प्रिय-वर्ग है।

इसमें प्रिय और अप्रिय रूपी द्वन्द्वों के दोष दिखाये हैं।

प्रिय और अप्रिय की परवाह न करो क्योंकि प्रिय का न देखना दुख है और अप्रिय का देखना दुख है। जिसका न कुछ प्रिय है न अप्रिय उसके लिये कोई बन्धन नहीं है।

राग से शोक होता है, राग से डर होता है। जो राग रहित है उसको न शोक है न डर है।

प्रेम से शोक होता है। प्रेम से डर होता है। जो प्रेम से मुक्त है उसको न शोक है न डर।

रति से शोक होता है। रति से डर होता है। रति से मुक्त पुरुष को न शोक है न भय।

काम से शोक होता है, काम से भय होता है। काम से मुक्त पुरुष को न शोक है न भय।

तृष्णा से शोक होता है, तृष्णा से भय होता है। तृष्णा से मुक्त पुरुष को न शोक है न भय।

जिस प्रकार सम्बन्धी और इष्ट मित्र यात्रा से लौटे हुये पुरुष का स्वागत करते हैं इसी प्रकार पुण्य कर्म उस पुण्यात्मा का स्वागत करते हैं जो इस लोक से परलोक को जाता है।

(१७) सत्रहवाँ क्रोध-वर्ग है।

इसमें क्रोध के दोष वर्णन किये गये हैं।

क्रोध को छोड़ो। मान को नष्ट करो। जो नाम और रूप में लिप्त नहीं उसको दुख नहीं होता।

सच्चा सारथी वही है जो चलते हुये रथ के समान क्रोध को रोक लेता है। अन्य सब केवल लगाम पकड़नेवाले हैं।

अक्रोध से क्रोध को जीते, साधु से असाधु को, कंजूस को दान से और झूठ को सच से।

सच बोले। क्रोध न करे। दान दे। तो देवताओं का प्रिय होता है।

जो नहीं बोलता उसको भी दोष देते हैं, जो बहुत बोलता है उसको भी दोष देते हैं, जो थोड़ा बोलता है उसको भी दोष देते हैं। कोई ऐसा नहीं जिसकी लोग निन्दा नहीं करते।

काया के कोप से बच। काया को वश में कर। कायिक दुराचार को छोड़ और अच्छे काम कर।

वाणी के कोप से बच। वाणी को वश में कर। वाचिक दुराचार को छोड़ और अच्छे काम कर।

मन के कोप से बच। मन को वश में कर। मानसिक दुराचार को छोड़ और अच्छे काम कर।

(१८) अठारहवां मल-वर्ग है।

इसमें लिखा है कि मल दूर होने से ही दिव्य आर्य्य भूमि के दर्शन हो सकेंगे।

जिस प्रकार सुनार सोने चांदी के मैल को दूर करता है इसी प्रकार मनुष्य को अपने मैल दूर करना चाहिये। लोहे का मोर्चा लोहे को खा जाता है। इसी प्रकार पाप मनुष्य को खा जाता है।

अनभ्यास उपासना के लिये मोरचा के समान है। बे मरम्मती घर के लिये। आलस्य सौन्दर्य के लिये और प्रमाद संरक्षक के लिये।

स्त्री का मल दुश्चरित्र है। दानी का मल मत्सर है। पाप दोनों लोकों का मल है।

सब मलों से अधिक मल अविद्या है। इसलिये निर्मल बनो।

जो प्राणों की हत्या करता है, जो झूठ बोलता है, जो पराई चीज़ को लेता है, जो पर स्त्री गमन करता है, जो शराब पीता है वह अपनी जड़ आप खोदता है।

ऐसे पुरुष को समाधि प्राप्त नहीं होती जो किसी पर इस लिये क्रोध करता है कि वह उसको न देकर दूसरों को देता है।

राग के समान कोई आग नहीं, द्वेष के समान कोई ग्राह नहीं, मोह के समान कोई जाल नहीं और तृष्णा के समान कोई नदी नहीं।

दूसरे का दोष जल्दी दीख जाता है। अपना देर में दीखता है। लोग दूसरों के दोषों को भुस के समान फटकते हैं और अपने दोषों को इस प्रकार छिपाते हैं जैसे चतुर जुआरी हराने वाले पासे को।

आकाश में कोई मार्ग नहीं है। वाह्य आडम्बरों से कोई श्रमण नहीं होता. संसार अनित्य है। बुद्ध लोग कभी चलायमान नहीं होते।

(१९) उन्नीसवाँ धम्मिट्ठ-वग्ग है।

इसमें धर्मात्माओं के लक्षण हैं।

धर्मिष्ठ वही है जो धर्म अधर्म का निश्चय कर सके। वह पण्डित नहीं जो बहुत बोले। क्षमाशील, वैर रहित और अभय पुरुष ही पण्डित है।

बाल पकने से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा वही है जो सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम, दम आदि का अवलम्बन करे। सिर मुंड़ाने से कोई श्रमण नहीं होता। श्रमण वही है जो पाप रहित हो।

भिक्षा मांगने से कोई भिक्षु नहीं बनता। भिक्षु वही है जो धर्म पूर्वक आचरण करे।

केवल मौन रहने से कोई मुनि नहीं बन सकता। जो तराजू के समान धर्म और अधर्म को तोल सकता है वही मुनि है।

जो प्राणियों की हत्या करता है वह आर्य नहीं। जो दया करे वही आर्य्य है।

वासनाओं के दूर करने से जो सुख मिलता है वह अपूर्व होता है। उसको साधारण मनुष्य जान नहीं सकते।

(२०) बीसवाँ मार्ग-वर्ग ।

मार्गों में आठ मार्ग श्रेष्ठ हैं। सत्यों में चार सत्य श्रेष्ठ हैं। धर्मों में वैराग्य श्रेष्ठ है। मनुष्यों में आंखोंवाला अर्थात् तत्वदर्शी श्रेष्ठ है।

उद्योग के बिना कुछ नहीं होता। अतः उद्योगशील बनो। सब उत्पन्न हुई चीजें अनित्य और दुखदायी हैं। शुद्धि का मार्ग यही है कि मनुष्य इसको समझे।

आलसी, समय पर न उठनेवाले, तथा निर्बल संकल्पवाले को प्रज्ञा की प्राप्ति कभी नहीं होती।

शुद्धि के लिये यही तीन मार्ग हैं अर्थात् काया, वाणी और मन की रक्षा करना।

ध्यान से ज्ञान होता है बिना ध्यान के ज्ञान नहीं हो सकता।

वासना के वन को काट डालो। एक भी वृक्ष शेष न रहे। तभी निर्वाण होगा।

जब तक पुरुष का स्त्री के साथ सम्बन्ध नहीं छुटता वह बन्धन में है।

"यहां वर्षा ऋतु में रहूंगा। यहाँ जाड़े में। यहाँ गर्मी में।" मूर्ख लोग बिना समझे हुये कि भविष्य में क्या होगा ऐसा सोचा करते हैं।

जो पुत्र और पशु के विचार में फँसा हुआ है उसे मौत ऐसे बहा ले जाती है जैसे पानी की बाढ़ सोते हुये गांव को।

जब मौत आती है तो पुत्र और पिता कुछ रक्षा नहीं कर सकते। इसलिये ज्ञानी पुरुष को चाहिये कि निर्वाण को प्राप्त करानेवाले मार्ग का शोधन करे।

(२१) इक्कीसवां विविध वर्ग है।

इसमें विविध बातों का उल्लेख है।

यदि थोड़े सुख के छोड़ने से बहुत सुख मिले तो उस थोड़े सुख को छोड़ दो।

दूसरों को दुख देकर सुख चाहनेवाला वैर के जाल में फँस जाता है।

जो कृत्य को छोड़कर अकृत को करते हैं उनकी वासनायें बढ़ जाती है।

गौतम का सच्चा शिष्य वही है जो सदा जागता रहे और धर्म तथा संघ का विचार करता रहे। अहिंसाव्रत को पाले।

सन्त लोग हिमवान पर्वत के समान दूर से चमकते हैं। असन्त रात में छोड़े हुये तीर के समान छिप जाते हैं।

(२२) बाईसवाँ नरक-वर्ग है।

झूठ बोलनेवाला नरक को जाता है।

साधुओं के वस्त्र पहन कर पाप करनेवाला नरक को जाता है।

राष्ट्र का धन व्यर्थ खाने से तो आग में तपाया हुआ लोहे का गोला खा लेना अच्छा।

पर स्त्री गामी को चार चीजें प्राप्त होती हैं, अपुण्यलाभ, कष्ट युक्त शय्या, निन्दा और नरक।

जैसे असावधानी से पकड़ा हुआ कुश हाथ को काट देता है इसी प्रकार असावधानी से साधु होने से नरक मिलता है।

जो कुछ करना है परिश्रम से करो। शिथिल परिव्राजक रोग उत्पन्न कर देता है।

दुष्कृत को न करो। नहीं तो पछताना पड़ेगा।

अपने को क़िले के समान सुरक्षित रक्खो। क्षण भर भी व्यर्थ न जाने दो। समय पर चूकने से नरक मिलेगा।

छोड़ने योग्य को छोड़। न छोड़ने योग्य को न छोड़। इसी में कल्याण है।

(२३) तेइसवां नाग वर्ग है।

इसमें 'हाथी' की उपमा देकर शिक्षा दी गई है।

जैसे हाथी लड़ाई में तीरों को सहता है इसी प्रकार दूसरों के अपशब्दों को सह।

वश में किये हुये हाथी पर ही सवारी की जाती है या इसी को लड़ाई में ले जाते हैं। इसी प्रकार जो अपशब्दों को सह लेता है वही श्रेष्ठ है।

पहले मेरा मन कामनाओं और सुख के पीछे पीछे दौड़ता था। अब मैंने उसे वश में कर लिया है। जैसे हाथीवान् हाथी को वश में करता है।

प्रमाद छोड़ो। विचारों को संभालो। कीचड़ में फँसे हुये हाथी के समान उससे निकलने की कोशिश करो।

यदि कोई अच्छा आदमी मिले तो उसके साथ चल दो। यदि अच्छा आदमी न मिले तो अकेले ही चल दो। जैसे हाथी बन को चल देता है।

अकेला चल. पाप न कर; अल्प इच्छायें रख, जैसे जङ्गल में हाथी।

मृत्यु के समय पुण्य ही साथी है। दुखों का छूटना ही सुख है।

माता की सेवा अच्छी, पिता की सेवा अच्छी, श्रमण अर्थात् साधु की सेवा अच्छी और ब्राह्मणों की सेवा अच्छी।

जीवन पर्य्यन्त शीलवान रहना अच्छा। प्रतिष्ठा के सहित श्रद्धा अच्छी। ज्ञान की प्राप्ति अच्छी। पाप का न करना अच्छा।

(२४) चौबीसवां तृष्णावर्ग है।

इसमें तृष्णा के दोष दिखाये गये हैं।

तृष्णा अमर बेल के समान बढ़ती है। वह एक वस्तु से दूसरी वस्तु तक इस प्रकार दौड़ती है जैसे बन्दर बन में एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर।

तृष्णा बीरन घास के समान अत्यन्त वेग से बढ़ती है।

जो इस दुर्जय तृष्णा को वश में कर लेता है। उसके शोक इस प्रकार दूर हो जाते हैं जैसे कमल के पत्ते से पानी की बूंदें।

जिस प्रकार नदी की धारा किनारे के नरकुलों को उखाड़ कर फेंक देती है उसी प्रकार विषय मनुष्य को नष्ट कर देता है।

जिस प्रकार जड़ न कटने पर कटा हुआ वृक्ष भी बढ़ जाता है इसी प्रकार जब तक तृष्णा को जड़ मूल से नष्ट न किया जाय उस समय तक दुखों की वृद्धि होती ही रहती है।

तृष्णा में फँसे हुये लोग ही जाति और जरा अर्थात् जन्म तथा बुढ़ापे के दुखों से पीड़ित होते हैं।

जिस प्रकार जाल में फँसा हुआ खरगोश भागकर भी नहीं बचता इसी प्रकार लोग सदा तृष्णा की बेड़ियों में जकड़े रहते हैं। इसलिये भिक्षुओं को तृष्णा से अलग रहना चाहिये।

जो भिक्षु एक बार तृष्णा को छोड़ कर फिर उसके बन्धन में फंसता है वह बड़ा अभागा है।

तर्क वितर्क अर्थात् संशय से पीड़ित, तीव्र राग में फंसे हुये, और सुख के अभिलाषी प्राणी की अभिलाषायें दृढ़ हो जाती हैं।

जो उद्देश्य को पहुंच गया, जिसकी तृष्णा जाती रही, जिसका दोष निवृत्त हो गया, जिसने जीवन के कांटों को काट डाला वह जन्म मरण से छूट जायगा।

बुद्धिमान लोग लोहे, लकड़ी या सन के बन्धन को दृढ़ नहीं कहते। पुत्र, स्त्री तथा धन का मोह सबसे बड़ा बन्धन है।

जो बन्धन खिंच जाय, ढीला पड़ जाय, परन्तु टूटे नहीं वही दृढ़ बन्धन है। परिव्राजक (सन्यासी) को यह बन्धन तोड़ देना चाहिये।

जिस प्रकार मकड़ी अपने ही जाल में फँसती है उसी प्रकार लोग राग में फँसते हैं।

सब दानों में धर्म का दान बढ़कर है, सब रसों में धर्म रस श्रेष्ठ है, सब सुखों में धर्म का सुख उत्कृष्ट है। तृष्णा के क्षय से सब सुख दूर होते हैं।

खेत का दोष तृण है और मनुष्य का दोष तृष्णा है। इस लिये राग द्वेष, मोह तथा तृष्णा से बचना चाहिये।

(२५) पच्चीसवां भिक्षु वर्ग है।

इसमें भिक्षुओं के कर्त्तव्य दिये हैं।

आंख का वश में करना अच्छा, कान का वश में करना अच्छा। नाक का वश में करना अच्छा। जीभ का वश में करना अच्छा। शरीर का वश में करना अच्छा। वाणी का वश में करना अच्छा। मन का वश में करना अच्छा!

भिक्षु वही है जो इन सब को वश में रखता है। एकान्त सेवी है और सन्तुष्ट है।

मधुर भाषी वही है जो थोड़ा बोले और धर्म का प्रचार करे।

जो भिक्षु पराये लाभ पर डाह करता है उसे समाधि की प्राप्ति नहीं होती।

सच्चा भिक्षु वही है जो किसी के नाम और रूप में ममता न करे और न बीती हुई बात पर शोक करे।

पाँच को काट, पांच को छोड़ और पांच को ले जो पांचों बुराइयों से मुक्त हो गया वही तरा हुआ है।

हे भिक्षु, ध्यान कर! प्रमाद न कर। चित्त को कामनाओं में न भ्रमा।

विना ध्यान के ज्ञान नहीं, विना ज्ञान के ध्यान नहीं, निर्वाण के निकट वही है जिसमें ज्ञान और ध्यान दोनों हों।

एकान्त सेवी और शान्त चित्त भिक्षु को दैवी सुख मिलता है।

दान करना और आचारकुशल होना चाहिये। तभी सुखों के आधिक्य के कारण दुखों का अन्त होगा!

जिस प्रकार बालिका अपने कुम्हलाये हुये फूलों को झाड़ देती है इसी प्रकार हे भिक्षु तुम राग और द्वेप को झाड़ दो।

अपने को अपने आप उठा! अपनी आप परीक्षा कर। यही सुख प्राप्ति का मार्ग है।

आप ही अपना स्वामी है, अपनी गति अपने तक ही है। अपने को संयम में रख जैसे बनिया अपने घोड़े को रखता है।

(२६) छब्बीसवां ब्राह्मणवर्ग है।

इसमें बताया है कि सच्चा ब्राह्मण कौन है, बुद्ध भगवान् कहते हैं:—

जो ध्यानी, दोष-रहित, कृतकार्य्य, विषय-रहित और उत्कृष्ट उद्देशों को पालता है उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

पाप-रहित को ब्राह्मण कहते हैं। शान्त आचरणवाले को श्रमण कहते हैं, जिसने अपने मलों को दूर कर दिया है उसको परिव्राजक कहते हैं।

किसी ब्राह्मण पर प्रहार न करो। न कोई ब्राह्मण उस प्रहार करनेवाले पर प्रहार करे।

जो शरीर, वाणी, और मन से बुरा काम नहीं करता उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

कोई जटा, गोत्र या जाति से ब्राह्मण नहीं होता। जिसमें सत्य और धर्म है वही सुखी और ब्राह्मण है।

मैं किसी को उसकी योनि अथवा माता के कारण ब्राह्मण नहीं कहता, चाहे उसका लोग सम्मान ही क्यों न करें। और चाहे वह धनवान् ही क्यों न हो। मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जो निर्धन और बन्धनों से मुक्त है।

मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जिसने कुछ अपराध नहीं किया फिर भी गाली, हानि तथा दण्ड को शान्ति से सह लेता है। जिसमें शान्ति-बल है और सेना के समान शक्ति है। मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो क्रोध रहित, कर्त्तव्य परायण, शीलवन्त, इच्छा-रहित, दमन युक्त, और जीवन्मुक्त है।

मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जो सुखों में लिप्त नहीं होता जैसे पानी में कमल या सुई की नोक पर सरसों।

मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जिसका ज्ञान गम्भीर है, जो मेधावी है, जो उचित और अनुचित को जानता है।

मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जो गृहस्थों और भिक्षुओं दोनों से अलग रहता है, जो घर-घर नहीं फिरता और जिसकी इच्छायें अल्प हैं।

मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जिसने डण्डे को उठा कर रख दिया है, जो स्थावर या जंगम किसी प्राणी को हानि नहीं पहुँचाता और न मारता है।

जो विरुद्धों से विरुद्ध नहीं, उद्दण्डों से शान्त और दान नहीं लेता उसी को ब्राह्मण कहता हूं।

मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जो इस लोक और परलोक दोनों की आशा नहीं रखता। जो विषयों और बन्धनों से रहित है।

मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जो पुण्य और पाप के द्वन्द्वों से अलग हो गया। जो शोक रहित पवित्र और शुद्ध है।

मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जो नेता, प्रबल, वीर, महर्षि, विजित काम, पवित्र और बुद्ध है। इत्यादि इत्यादि।

धम्मपद

यमकवग्गो पठमो।

पहला अध्याय यमकवर्ग

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।

उसको नमस्कार हो जो भगवान, योग्य और बुद्धिवाला है ।

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया ॥
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा ।
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं व वहतो पदं ॥ १ ॥

१—मन ही धर्म का पूर्वज है। मन ही धर्म का स्वामी है। धर्म मन से बना हुआ है। दुष्ट मन से जो मनुष्य कुछ कहता या करता है दुःख उसके पीछे इस प्रकार लग जाता है जैसे गाड़ी के बैल के पीछे पहिया।

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया ।
मनसा चे पसन्नेन भासति व करोति वा ॥
ततो नं सुखमन्वेति छाया व अनपायिनी ॥ २ ॥

२—धर्म मनोपूर्वङ्गम, मनः श्रेष्ठ तथा मनोमय है। जो पुरुष पवित्र मन से कहता या करता है उसके साथ साथ सुख इस प्रकार चलता है, जैसे हानि न पहुँचानेवाली छाया किसी के पीछे चलती है।

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।
ये तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥ ३ ॥

३—जो लोग इस प्रकार का विचार रखते हैं कि अमुक पुरुष ने मुझे गाली दी, अमुक ने मुझे मारा, अमुक ने मुझे पराजित किया या अमुक ने मुझे लूट लिया उनके हृदय में वैरभाव दूर नहीं होता।

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥ ४ ॥

४—जो लोग इस प्रकार के विचार नहीं रखते कि मुझे अमुक ने गाली दी या मारा या पराजित किया या लूट लिया। उनके हृदयों में वैरभाव नहीं होता।

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन ।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥ ५ ॥

५—वैर से वैर कभी नहीं जाता। किन्तु मित्रता से वैर चला जाता है। यही सनातन धर्म है।

परे च न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे ।
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा ॥ ६ ॥

६—दूसरे लोग (मूर्ख) नहीं जानते कि हमारा यहाँ अन्त (नाश) हो रहा है। परन्तु जो ऐसा जानते हैं उनका वैर छूट जाता है।

सुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंवुतं ।
भोजनम्हि अमत्तञ्ञुं कुसीतं हीनवीरियं ॥
तं वे पसहति मारो वातो रुक्खं व दुब्बलं ॥ ७ ॥

७—जिस प्रकार हवा दुर्बल वृक्ष को उखाड़ देती है उसी प्रकार मार (विषय) उस पुरुष को दबा लेते हैं जो सुखों में लिप्त है । जिसकी इन्द्रियां वशीभूत नहीं हैं । जो भोजन में मस्त है, जो आलसी और हीनवीर्य्य है ।

असुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु सुसंवुतं ।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं सद्धं आरद्धवीरियं ॥
तं वे नप्पसहति मारो वातो सेलं व पब्बतं ॥ ८ ॥

८—जिस प्रकार हवा पहाड़ को नहीं गिरा सकती इसी प्रकार मार (विषय) उसको नहीं दबा सकता । जो सुखों में लिप्त नहीं, जिसने इन्द्रियों को वश में कर लिया है, जो नियमित भोजन करता है, श्रद्धालु है और वीर्य्यवान है ।

अनिक्कसावो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति ।
अपेतो दमसच्चेन न सो कासावमरहति ॥ ९ ॥

९—जो पुरुष दोष रहित न होकर ही गेरुआ वस्त्र धारण कर लेता है, और जिसमें दम या सत्यता नहीं है वह गेरुए वस्त्र का अधिकारी नहीं है ।

यो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो ।
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहति ॥ १० ॥

१०—परन्तु जिस पुरुष ने दोषों को छोड़ दिया है जो शीलवान है तथा दम और सत्यता से युक्त है वही गेरुए वस्त्रों के योग्य है ।

असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो ।
ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासङ्कप्पगोचरा ॥११॥

११—जो असार को सार और सार को असार समझते हैं । उनको सार की कभी प्राप्ति नहीं होती और वह कुत्सित इच्छाओं में फँसे रहते हैं ।

सारं च सारतो ञत्वा असारं च असारतो
ते सारं अधिगच्छन्ति सम्मासंकप्पगोचरा ॥१२॥

१२—परन्तु जो सार को सार और असार को असार समझते हैं उनको सार की प्राप्ति हो जाती है और वह यथेष्ट फल को प्राप्त होते हैं ।

यथा अगारं दुच्छन्नं वुट्ठि समतिविज्झति ।
एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्झति ॥१३॥

१३—जिस प्रकार उस मकान में वर्षा का पानी सहज ही आजाता है जिस पर छप्पर नहीं है । इसी प्रकार अशिक्षित चित्त में राग सहज ही आ जाता है ।

यथा अगारं सुच्छन्नं वुट्ठि न समतिविज्झति ।
एवं अभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति ॥१४॥

१४—जैसे अच्छी तरह छाये हुये घर में वर्षा का जल सहज-तया नहीं पहुँच सकता। इसी प्रकार सुशिक्षित में राग भी नहीं पहुँच सकता।

इध सोचति पेच्च सोचति पापकारी उभयत्थ सोचति।
सो सोचति सो विहञ्ञति दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो ॥१५॥

१५—पापी इस लोक में भी दुख पाता है और परलोक में भी। वह दोनों लोकों में दुःख पाता है। वह सोचा करता है और अपने कर्म्मों की कालिमा को देखकर कष्ट उठाता है।

इध मोदति पेच्च मोदति कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति।
सो मोदति सो पमोदति दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो ॥१६॥

१६—पुण्य कर्म करनेवाला यहाँ भी सुखी होता है और वहाँ भी सुखी होता है। वह दोनों जगह सुखी होता है। अपने कर्म्मों की शुद्धता को देखकर वह मोद प्रमोद करता है।

इध तप्पति पेच्च तप्पति पापकारी उभयत्थ तप्पति।
पापं मे कतं ति तप्पति भिय्यो तप्पति दुग्गतिं गतो ॥१७॥

१७—पापी को यहाँ भी जलन है वहाँ भी जलन है, दोनों जगह जलन है। मेरा कैसा पाप है यह देखकर वह जलता है। दुर्गति को पाकर वह जलता है।

इध नन्दति पेच्च नन्दति कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।
पुञ्ञं मे कतं ति नन्दति भिय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो ॥१८॥

१८—पुण्यात्मा यहाँ भी सुखी होता है वहाँ भी सुखी होता है

दोनों जगह सुखी होता है। मेरा कैसा पुण्य है यह देखकर वह सुखी होता है। सुगति को पाकर वह सुखी होता है।

बहुं पि चे सहितं भासमानो न तक्करो होति नरो पमत्तो ।।
गोपो व गावो गणयं परेसं न भागवा सामञ्ञस्स होति ।।१९।।

१९—जो आदमी कहता बहुत है और करता कुछ नहीं और प्रमादी है वह श्रमण अर्थात् साधु नहीं हो सकता। वह उस ग्वाले के समान है जो दूसरों की गायों को गिनता रहता है।

अप्पं पि चे सहितं भासमानो धम्मस्स होति अनुधम्मचारी।
रागं च दोसं च पहाय मोहं सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा स भागवा सामञ्ञस्स होति।।२०

२०—परन्तु जो धर्म को थोड़ा ही कहता है और धर्म पर चलता है; राग द्वेष और मोह को छोड़ देता है। सम्यक ज्ञान प्राप्त करता है और चित्त स्थिर करता है वह इस लोक और परलोक की परवाह न करके साधुता का भागी हो सकता है अर्थात श्रमण बन सकता है।

इति यमकवग्गो पठमो।

यह पहला *यमकवर्ग हुआ।

*इसको यमक इसलिये कहते हैं कि लगातार दो दो का वर्णन है। दुष्ट मन वाला और श्रेष्ठमनवाला, द्वेष को याद रखनेवाला और याद न रखनेवाला, वैर और प्रेम, विषयी और निर्विषयी, ज्ञानी और अज्ञानी, सुशिक्षित चित्त और अशिक्षित चित्त, पापी और पुण्यात्मा; बहुभाषी अकर्मण्य और मितभाषी कर्मण्य।

अप्पमादवग्गो दुतियो

दूसरा अध्याय अप्रमादवर्ग

अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं ।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ॥ १ ॥

१—अप्रमाद से अमृतपद की प्राप्ति होती है। और प्रमाद से मृत्यु की। जो प्रमाद रहित हैं वह नहीं मरते। और प्रमादी मरे के ही समान हैं।

एतं विसेसतो ञत्वा अप्पमादम्हि पण्डिता ।
अप्पमादे पमोदन्ति अरियानं गोचरे रता ॥ २ ॥

२—इस प्रकार अप्रमाद को विशेष रीति से जानकर पण्डित लोग आर्य्यों के ज्ञान में रत हुये अप्रमाद से सुखी होते हैं।

ते झायिनो साततिका निच्चं दळ्हपरक्कमा ।
फुसन्ति धीरा निब्बाणं योगक्खेमं अनुत्तरं ॥ ३ ॥

३—धीर लोग नित्य ध्यान, ज्ञान तथा दृढ़ परिक्रम करके श्रेष्ठ योग क्षेम युक्त निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

उट्ठानवतो सतिमतो सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो ।
संयतस्स च धम्मजीविनो अप्पमत्तस्स यसोऽभिवड्ढति ॥४॥

४—उस प्रमाद रहित पुरुष का यश बढ़ता है जो उठा हुआ है।

जो ध्यानी है, जिसके काम पवित्र हैं, जो सोचकर काम करता है। जो संयम में रहने वाला तथा धर्म के अनुकूल चलता है।

उट्ठानेनप्पमादेन संयमेन दमेन च ।
दीपं कयिराथ मेधावी यं ओघो नाभिकीरति ॥ ५ ॥

५—जागृति, अप्रमाद, संयम और दम से बुद्धिमान् लोग ऐसा द्वीप बनाते हैं जिस तक (समुद्र का) पानी चढ़ नहीं सकता।

पमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुम्मेधिनो जना ।
अप्पमादं च मेधावी धनं सेट्ठं व रक्खति ॥ ६ ॥

६—दुर्बुद्धि पुरुष प्रमाद में लग जाते हैं। परन्तु बुद्धिमान पुरुष अप्रमाद की श्रेष्ठ धन के समान रक्षा करता है।

मा पमादमनुयुञ्जेथ मा कामरतिसन्थवं ।
अप्पमत्तो हि झायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं ॥ ७ ॥

७—प्रमाद में मत लगो। काम के लोलुप न बनो। जो प्रमाद को छोड़कर ध्यान करता है वही बड़े सुख को पाता है।

पमादं अप्पमादेन यदा नुदति पण्डितो ।
पञ्ञापासादमारुय्ह असोको सोकिनिं पजं ।
पब्बतट्ठो व भुम्मट्ठे धीरो बाले अवेक्खति ॥ ८ ॥

८—जब पण्डित अप्रमादी होकर प्रमाद का नाश कर देता है तो वह बुद्धि के महल पर खड़ा होकर शोक रहित होकर शोकवालों को नीचे देखता है। वह बुद्धिमान् मूर्खों को इस प्रकार देखता है जैसे कोई पहाड़ पर चढ़कर जमीन पर रहनेवालों को देखे।

अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो ।
अबलस्सं व सीघस्सो हित्वा याति सुमेधसो ॥ ९ ॥

९—प्रमाद वालों में अप्रमादी, सोते हुओं में जागता हुआ बुद्धिमान् पुरुष घुड़दौड़ में सब को पीछे छोड़कर आगे निकल जाता है ।

अप्पमादेन मघवा देवानं सेट्ठतं गतो ।
अप्पमादं पसंसन्ति पमादो गरहितो सदा ॥ १० ॥

१०—अप्रमाद से ही इन्द्र देवों में श्रेष्ठ हो गया । लोग अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं । प्रमाद को सदा गर्हित समझते हैं ।

अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा ।
संयोजनं अणुं थूलं डहं अग्गी व गच्छति ॥ ११ ॥

११—प्रमादरहित भिक्षु प्रमाद को तिरछी दृष्टि से देखता है । और छोटे बड़े बन्धनों को जलाता हुआ आग के समान आगे बढ़ता है ।

अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा ।
अभब्बो परिहानाय निब्बाणस्सेव सन्तिके ॥ १२ ॥

१२—प्रमाद रहित भिक्षु प्रमाद को तिरछी दृष्टि से देखता है, वह पराभव को प्राप्त नहीं होता और निर्वाण के निकटस्थ हो जाता है ।

इति अप्रमाद वर्गः द्वितीयः ।

यह दूसरा अप्रमाद वर्ग हुआ ।

चित्तवग्गो ततियो

तीसरा अध्याय चित्तवर्ग

फन्दनं चपलं चित्तं दुरक्खं दुन्निवारयं ।
उजुं करोति मेधावी उसुकारो' व तेजनं ॥ १ ॥

१—जिस प्रकार तीर बनाने वाला तीर को सीधा करता है । इसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष अपने उस मन को सीधा करता है जो हिलता है, चपल है, जिसकी रक्षा करना कठिन है और जो कठिनाई से वश में रक्खा जा सकता है ।

वारिजो' व थले खित्तो ओकमोकत उब्भतो ।
परिफन्दतिदं चित्तं मारधेय्यं पहातवे ॥ २ ॥

२—जिस प्रकार मछली पानी से निकल कर थल में आ पड़ने पर कांपती है इसी प्रकार चित्त मार (विषयों) से भागने के लिये कांपता है ।

दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थकामनिपातिनो ।
चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥ ३ ॥

३—कठिनता से वश में करने योग्य, चंचल और जहां तहां दौड़ने वाले मन का दमन करना अच्छा है, दमन किये हुये मन से शान्ति मिलती है ।

सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थकामनिपातिनं ।
चित्तं रक्खेथ मेधावी चित्तम् गुत्तम् सुखावहं ॥ ४ ॥

४—कठिनता से समझ में आने के योग्य, निपुण तथा जहां तहां दौड़ने वाले मन की बुद्धिमान पुरुष रक्षा करे। क्योंकि रक्षा किये हुये मन से सुख मिलता है।

दूरङ्गमं एकचरं असरीरं गुहासयं ।
ये चित्तम् संयमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना ॥ ५ ॥

५—दूर दूर दौड़ने वाले, एकाकी चलने वाले, शरीर रहित और हृदय की गुफा में छिपे हुये मन को जो संयम में रखते हैं वही मार (विषयों) के बन्धन से छूटते हैं।

अनवट्ठितचित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो ।
परिप्लवपसादस्स पञ्ञा न परिपूरति ॥ ६ ॥

६—उस पुरुष का ज्ञान पूरा नहीं होता जिसका चित्त अनवस्थित है, जो सच्चे धर्म को नहीं जानता, और जिसके हृदय में शान्ति नहीं है।

अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो ।
पुञ्ञपापपहीनस्स नत्थि जागरतो भयं ॥ ७ ॥

७—यदि किसी मनुष्य का चित्त अनवस्थित नहीं है, यदि उसके मन में क्षोभ नहीं है और यदि उसे पाप तथा पुण्य का विचार नहीं है तो वह जागता हुआ भय नहीं करता।

कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा।
योधेथ मारं पञ्ञायुधेन जितं च रक्खे अनिवेसनो सिया ॥८॥

८—शरीर को घड़े के समान टूटने वाला समझ कर और मन को किले के समान मजबूत करके बुद्धि के अस्त्र से मार (विषय) के साथ युद्ध करें और जब मार को जीत ले तो उसके ऊपर दृष्टि रक्खे। असावधानी न करे।

अचिरं वतयं कायो पठविं अधिसेस्सति।
छुद्धो अपेतविञ्ञाणो निरत्थं व कलिङ्गरं ॥ ९ ॥

९—निश्चय रक्खो कि यह क्षुद्र और ज्ञान रहित शरीर निरर्थक लकड़ी के समान बहुत जल्द गिर पड़ेगा।

दिसो दिसं यं तं कयिरा वेरी वा पन वेरिनं।
मिच्छापणिहितं चित्तम् पापियो नं ततो करे ॥ १० ॥

१०—द्वेषी द्वेष वाले से और वैरी बैरी के साथ जो कुछ करता है उससे भी अधिक हानि न वश में किया हुआ मन मनुष्य के साथ करता है।

न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च ञातका।
सम्मापणिहितं चित्तम् सेय्यसो नं ततो करे ॥ ११ ॥

११—जो कुछ माता पिता या अन्य जाति वाले किसी के साथ कर सकते हैं उनसे कहीं अधिक सेवा वश में रक्खा हुआ मन करता है।

इति चित्तवग्गो तृतियो।
यहतीसरा चित्तवर्ग समाप्त हुआ।

पुप्फ वग्गो चतुत्थो

चौथा अध्याय पुप्फवर्ग

को इमं पठविं विजस्सति यमलोकं च इमं सदेवकं ।

को धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ॥ १ ॥

१—इस लोक को और देवताओं के सहित यमलोक को कौन विजय करेगा ? जिस प्रकार माला बनानेवाला पुरुष उचित फूल को तलाश कर लेता है इस प्रकार कौन ठीक प्रकार से बताये हुये धर्म्म-पद को प्राप्त करेगा ?

सेखो पठविं विजस्सति यमलोकं च इमं सदेवकं ।

सेखो धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ॥ २ ॥

२—शिष्य इस लोक और देवताओं के सहित यमलोक को जीत लेगा । जिस प्रकार माला बनानेवाला उचित पुष्प को तलाश कर लेता है इसी प्रकार शिष्य उपदिष्ट कल्याणकारी धर्म्मपद को तलाश कर लेगा ।

फेणूपमं कायमिमं विदित्वा
मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो ।
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि
अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे ॥ ३ ॥

३—इस काया को फेन के समान जानकर, और मृगतृष्णिका समझकर, मार (कामदेव) के पुष्पबाणों को काटकर मनुष्य मार की आंख से बचकर रहे।

पुप्फानि हेव पचिनन्तं ब्यासत्तमनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघो व मच्चु आदाय गच्छति ॥ ४ ॥

४—जिस प्रकार जल की बाढ़ सोते हुये गांव को बहा ले जाती है। इसी प्रकार उस मनुष्य को मौत बहा ले जाती है जो फूल चुननेवाले के समान विषयों में फँसा रहता है।

पुप्फानि हेव पचिनन्तं ब्यासत्तमनसं नरं।
अतित्तं येव कामेसु अन्तको कुरुते वसं ॥ ५ ॥

५—फूलों को चुनते हुये और विषयों में फँसे हुये मनुष्य को मृत्यु उस समय वश में कर लेती है जब वह अपनी विषय-वासना को तृप्त भी नहीं कर पाता।

यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे ॥ ६ ॥

६—मुनि को गांव में इस प्रकार विचरना चाहिये जैसे भौंरा फूल के रंग और सुगन्ध को न बिगाड़ता हुआ उसके रस को चूस लेता है।

न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं।
अत्तनो व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ॥ ७ ॥

७—दूसरे की त्रुटियों या कृत्य और अकृत्यों को न देखो। अपनी ही त्रुटियों और कृत्य तथा अकृत्यों पर विचार करो।

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं अगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा अफला होति अकुब्बतो ॥ ८ ॥

८—जैसे सुन्दर फूल रंगदार तो होता है परन्तु सुगन्धवाला नहीं होता। इसी प्रकार सुन्दर शब्द यदि कार्य्य रूप में परिणत न किये जायँ तो व्यर्थ होते हैं।

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं सगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा सफला होति सकुब्बतो ॥ ९ ॥

९—जिस प्रकार सुन्दर फूल में रंग और गन्ध दोनों होते हैं। इसी प्रकार सुन्दर शब्द भी कार्य्य में परिणत होकर सफल होते हैं।

यथापि पुप्फरासिम्हा कयिरा मालागुणे बहू।
एवं जातेन मच्चेन कत्तब्बं कुसलं बहुं ॥ १० ॥

१०—जिस प्रकार फूलों की राशि से लोग फूल चुन चुन कर माला गूंथते हैं इसी प्रकार मनुष्य को चाहिये कि इस संसार में अच्छे कर्तव्यों को इकट्ठा करे।

न पुप्फगन्धो पटिवातमेति न चन्दनं तगरं मल्लिका वा।
सतं च गन्धो पटिवातमेति सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति॥११॥

११—कोई खुशबू चाहे वह चन्दन की हो, चाहे तगर की चाहे मल्लिका की वायु से उलटी ओर नहीं जाती। परन्तु सत्पुरुषों की

सुगन्धि वायु से उलटी ओर भी चलती है। सत्पुरुषों का प्रवेश सब दिशाओं में है।

चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो ॥ १२ ॥

१२—चन्दन, तगर, कमल और वस्सिकी फूलों में सबसे अच्छी गन्ध शीलता की है।

अप्पमत्तो अयं गन्धो यायं तगरचन्दनी।
यो च सीलवतं गन्धो वाति देवेसु उत्तमो ॥ १३ ॥

१३—तगर और चन्दन की जो गन्ध है वह अच्छी नहीं है। शीलवान् पुरुषों की गन्ध अच्छी होती है और देवों तक पहुँचती है।

तेसं संपन्नसीलानं अप्पमादविहारिनं।
सम्मदञ्ञा विमुत्तानं मारो मग्गं न विन्दति ॥ १४ ॥

१४—मार (विषय) उनके मार्ग को नहीं पाता जो शील-सम्पन्न हैं, प्रमाद रहित हैं, ज्ञानी हैं, विमुक्त हैं।

यथा सङ्कारधानस्मिं उज्झितस्मिं महापथे।
पदुमं तत्थ जायेथ सुचिगन्धं मनोरमं ॥ १५ ॥

१५—जिस प्रकार रास्ते में पड़े हुये कूड़े के ढेर पर भी सुन्दर और सुगन्धित फूल उत्पन्न हो जाता है।

एवं सङ्कारभूतेसु अन्धभूते पुथुज्जने।
अतिरोचति पञ्ञाय सम्मासम्बुद्धसावको ॥ १६ ॥

१६—इसी प्रकार अन्धकार में फँसे हुये मनुष्यों के बीच में सम्यक बुद्धि को प्राप्त हुये मनुष्य सुशोभित होते हैं।

इति पुप्फवग्गो चतुत्थो।

यह चौथा पुष्पवर्ग समाप्त हुआ

बालवग्गो पञ्चमो

पांचवां अध्याय बालवर्ग

दीघा जागरतो रत्ति दीघं सन्तस्स योजनं ।
दीघो बालानं संसारो सद्धम्मं अविजानतं ॥ १ ॥

१—जागने वाले को रात बड़ी मालूम होती है । थके हुये को मार्ग लम्बा मालूम होता है । सद्धर्म न जानने वाले अज्ञानी के लिये संसार यात्रा बड़ी लम्बी होती है ।

चरं चे नाधिगच्छेय्य सेय्यं सदिसमत्तनो ।
एकचरियं दळ्हं कयिरा नत्थि बाले सहायता ॥ २ ॥

२—अगर मार्ग में जाते हुये तुम को अपने से अच्छा या अपने समान साथी न मिले तो अकेले ही चलो । मूर्खों से सहायता न लेनी चाहिये ।

पुत्ता मत्थि धनं मत्थि इति बालो विहञ्ञति ।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि कुतो पुत्ता कुतो धनं ॥ ३ ॥

३—मूर्ख सोचता है कि पुत्र मेरा है धन मेरा है । वह स्वयं अपना नहीं है फिर किसके पुत्र और किसका धन ।

यो बालो मञ्ञति बाल्यं पण्डितो वापि तेन सो ।
बालो च पण्डितमानी स वे बालो ति वुच्चति ॥ ४ ॥

४—जो मूर्ख अपने को मूर्ख समझता है वह इस अंश में बुद्धिमान है। परन्तु जो मूर्ख अपने को पण्डित समझता है वह तो सचमुच मूर्ख ही है।

यावजीवं पि चे बालो पण्डितं पयिरुपासति।
न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूपरसं यथा॥ ५॥

५—जिस प्रकार चम्मच तरकारी के स्वाद को नहीं समझ सकती। इसी प्रकार मूर्ख आयु भर पण्डितों के पास रह कर भी ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता।

मुहुत्तमपि चे विञ्ञू पण्डितं पयिरुपासति।
खिप्पं धम्मं विजानाति जिव्हा सूपरसं यथा॥ ६॥

६—जिस प्रकार जीभ तरकारी को चखते ही उसके स्वाद को जान लेती है इसी प्रकार विज्ञानी पुरुष पण्डितों का एक मुहूर्त्त के लिये सत्सङ्ग करके भी धर्म को जान लेते हैं।

चरन्ति बाला दुम्मेधा अमित्तेनेव अत्तना।
करोन्ता पापकं कम्मं यं होति कटुकप्फलं॥ ७॥

७—अज्ञानी मूर्ख स्वयं अपने अमित्र (शत्रु) हैं। वह पाप कर्म करते हैं जो कड़वे फलों को उत्पन्न करते हैं।

न तं कम्मं कतं साधु यं कत्वा अनुतप्पति।
यस्स अस्सुमुखो रोदं विपाकं पटिसेवति॥ ८॥

८—वह काम अच्छा नहीं है जिसको करके पछताना पड़े। जिसका फल रोना पीटना आदि हो।

नं च कम्मं कतं साधु यं कत्वा नानुतप्पति।
यस्स पतीतो सुमनो विपाकं पटिसेवति॥ ९॥

९—वह काम अच्छा है जिसको करके पछताना नहीं पड़ता। और जिसके फल को मनुष्य खुशदिल होकर ग्रहण करता है।

मधु वा मञ्ञती बालो याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चती पापं अथ बालो दुक्खं निगच्छति॥१०॥

१०—पाप कर्म का जब तक फल नहीं मिलता उस समय तक मूर्ख पाप को मीठा समझता है। परन्तु जब पाप के फल उदय होने लगते हैं तो मूर्खों को दुख होता है।

मासे मासे कुसग्गेन बालो भुञ्जेथ भोजनं।
न सो सङ्खतधम्मानं कलं अग्घति सोळसिं॥ ११॥

११—चाहे मूर्ख महीने महीने कुश के अग्र भाग पर रख कर भोजन करे तो भी वह धर्मज्ञों की सोलहवीं कला के समान नहीं है।

न हि पापं कतं कम्मं सज्जुखीरं व मुच्चति।
डहन्तं बालमन्वेति भस्मच्छन्नो व पावको॥ १२॥

१२—पाप कर्म्म दूध के समान एक साथ नहीं जम जाता। किन्तु आग के समान थोड़ा थोड़ा जलकर मूर्ख को भी भस्म कर देता है।

यावदेव अनत्थाय ञत्तं बालस्स जायति ।
हन्ति बालस्स सुक्कंसं मुद्धमस्स विपातयं ॥ १३ ॥

१३—जब मूर्ख का पाप कर्म्म जाना जाकर उसके लिये दुःख का कारण होता है उस समय वह उसके पुण्य कर्म को नष्ट कर देता या उसके सिर को फोड़ देता है ।

असतं भावनमिच्छेय्य पुरेक्खारं च भिक्खुसु ।
आवासेसु च इस्सरियं पूजा परकुलेसु च ॥ १४ ॥

१४—मूर्खों को झूठा यश, भिक्षुओं में पुरस्सर होने की इच्छा. आवास या मठों में ऐश्वर्य्य और पराये कुलों में पूजा चाहने दो ।

ममेव कतमञ्ञन्तु गिही पब्बजिता उभो ।
ममेव अतिवसा अस्सु किच्चाकिच्चेसु किस्मिचि ।
इति बालस्स सङ्कप्पो इच्छा मानो च वड्ढति ॥ १५ ॥

१५—गृहस्थ और परिव्राजक (सन्यासी) दोनों मेरे कामों को अच्छा समझें, कर्त्तव्य और—अकर्त्तव्य में मेरी ही बात मानें। ऐसा मूर्खों का संकल्प होता है। इससे इच्छा और अभिमान दोनों बढ़ते हैं।

अञ्ञा हि लाभूपनिसा अञ्ञा निब्बाणगामिनी ।
एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खु बुद्धस्स सावको ॥
सक्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुब्रूहये ॥ १६ ॥

१६—लाभ पहुचाने वाला मार्ग अन्य है और निर्वाण प्राप्त कराने वाला मार्ग अन्य है। ऐसा जानकर बुद्ध के श्रावक (शिष्य) को सत्कार (यश) की इच्छा न करनी चाहिये किन्तु संसार से विवेक (वैराग्य) प्राप्त करना चाहिये।

इति बाल वग्गो पञ्चमो।

यह पाँचवाँ बालवर्ग हुआ।

पण्डितवग्गो छट्ठो

छठा अध्याय पण्डितवर्ग

निधीनं व पवत्तारं यं पस्से वज्जदस्सिनं ।

निग्गय्हवादिं मेधाविं तादिसं पण्डितं भजे ।

तादिसं भजमानस्स सेय्यो होति न पापियो ॥ १ ॥

१—जो दोष दिखलावे उसको खजाना दिखाने वाला समझो। उस बुद्धिमान् पण्डित की समीपता प्राप्त करो जो तुम्हारे दोष दिखाकर तुमको बकता है। ऐसे पुरुष को भजने में कल्याण होगा। बुराई न होगी।

ओवदेय्यानुसासेय्य असब्भा च निवारये ।

सतं हि सो पियो होति असतं होति अप्पियो ॥ २ ॥

२—मनुष्य को चाहिये कि दूसरों को शिक्षा दें, पढ़ावें और उनकी अशुभ बातों को दूर करें। इस प्रकार अच्छे पुरुष उसको प्रिय समझेंगे और बुरे अप्रिय।

न भजे पापके मित्ते न भजे पुरिसाधमे ।

भजेथ मित्ते कल्याणे भजेथ पुरिसुत्तमे ॥ ३ ॥

३—पापी को मित्र न बनाओ। न अधम पुरुष को। कल्याण करने वाले को मित्र बनाओ। और उत्तम पुरुषों के साथ रहो।

धम्मपीति सुखं सेति विप्पसन्नेन चेतसा ।
अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो ॥ ४ ॥

३—जो व्यवस्थित चित्त से धर्म्म का पान करता है वह सुखी होता है। बुद्धिमान् मनुष्य आर्य्यों (श्रेष्ठों) से कहे हुये धर्म से सदा आनन्दित होते हैं।

उदकं हि नयन्ति नेत्तिका उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।
दारुं नमयन्ति तच्छका अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ॥५॥

४—कुँआ बनानेवाले जल के नेता हैं। तीर बनाने वाले तीर को नमाते हैं। बढ़ई लकड़ी को नमाते हैं। और बुद्धिमान लोग अपनी आत्मा का दमन करते हैं।

सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति ।
एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता ॥ ६ ॥

६—जैसे बड़ा पहाड़ हवा से नहीं उड़ सकता। उसी प्रकार बुद्धिमान् लोग निन्दा और स्तुति से विचलित नहीं होते।

यथापि रहदो गम्भीरो विप्पसन्नो अनाविलो ।
एवं धम्मानि सुत्वान विप्पसीदन्ति पण्डिता ॥ ७ ॥

७—गहरी, स्वच्छ और निर्मल झील के समान बुद्धिमान् लोग धर्म को सुनकर प्रसन्न होते हैं।

सब्बत्थ वे सप्पुरिसा वजन्ति
न कामकामा लपयन्ति सन्तो ।

सुखेन फुट्ठा अथवा दुखेन
न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति ॥ ८ ॥

८—सत् पुरुष सर्वत्र (स्वतंत्रता) से रहते हैं। सन्त लोग विषयों की बातें नहीं करते। चाहे सुख से रहें चाहे दुख से. बुद्धिमान लोग उछलते या गिरते नहीं दिखाई देते।

न अत्तहेतु न परस्स हेतु
न पुत्तमिच्छे न धनं न रट्ठं।
न इच्छेय्य अधम्मेन समिद्धिमत्तनो
स सीलवा पञ्ञवा धम्मिको सिया ॥ ९ ॥

९—वही पुरुष शीलवान्, बुद्धिमान् और धार्मिक है जो न अपने लिये और न दूसरे के लिये पुत्र. धन आदि की इच्छा करता है और जो अधर्म से समृद्धि नहीं चाहता।

अप्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो।
अथायं इतरा पजा तीरमेवानुधावति ॥ १० ॥

१०—ऐसे मनुष्य थोड़े हैं जो पार पहुँच जायें। दूसरे लोग तो किनारे पर ही चलते हैं।

ये च खो सम्मदक्खाते धम्मे धम्मानुवत्तिनो।
ते जना पारमेस्सन्ति मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं ॥ ११ ॥

११—जिनको धर्म बताया गया और जो धर्म पर चलते हैं वे लोग दुर्गम मृत्युलोक को पार कर लेंगे।

कण्हं धम्मं विप्पहाय सुक्कं भावेथ पण्डितो ।
ओका अनोकं आगम्म विवेके यत्थ दूरमं ॥ १२ ॥
तत्राभिरतिमिच्छेय्य हित्वा कामे अकिञ्चनो ।
परियोदपेय्य अत्तानं चित्तक्लेसेहि पण्डितो ॥ १३ ॥

१२-१३—बुरे धर्म को छोड़कर पण्डित अच्छे धर्म पर चलें। घर छोड़कर बिना घर का होके ज्ञानपूर्वक बरते। सब कामनाओं को छोड़ दे और अपने को क्लेशों से बचावे।

येसं सम्बोधिअङ्गेसु सम्मा चित्तं सुभावितं ।
आदानपटिनिस्सग्गे अनुपादाय ये रता ।
खीणासवा जुतीमन्तो ते लोके परिनिब्बुता ॥ १४ ॥

१४—इस संसार में वही मुक्त है जिन्होंने ज्ञान के सब अङ्गों
चित्त को सुव्यवस्थित किया है। जो किसी चीज़ से लगे लिपटे
ीं हैं, जो किसी से प्रेम नहीं रखते, जिनकी वासना नष्ट होगई है
र जो ज्योतिवाले हैं।

इति पण्डितवग्गो छट्ठो

यह छठा पण्डितवर्ग हुआ

अरहन्तवग्गो सत्तमो

सातवां अध्याय अरहन्तवर्ग

गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि ।
सब्बगन्थप्पहीनस्स परिळाहो न विज्जति ॥ १ ॥

१—उस पुरुष को कुछ भी डाह नहीं जिसकी गति निश्चित है, जो शोक रहित है जो सर्व प्रकार से मुक्त है और जिसकी सब ग्रन्थियां (गाठें) खुल गई हैं ।

उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो न निकेते रमन्ति ते ।
हंसा व पल्ललं हित्वा ओकमोकं जहन्ति ते ॥ २ ॥

२—सती सन्त लोग चलते फिरते हैं । वह घर में आराम नहीं करते । जैसे हंस झील को छोड़ देते हैं इसी प्रकार वे अपने घर को छोड़ देते हैं ।

येसं सन्निचयो नत्थि ये परिञ्ञातभोजना ।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।
आकासेव सकुन्तानं गति तेसं दुरन्नया ॥ ३ ॥

३—जिनके पास खजाना नहीं है, जो परिज्ञात भोजन हैं अर्थात जो जंचा हुआ खाते हैं और जिन्होंने संसार को अनित्य समझ कर मोक्ष प्राप्त करली है उनकी गति उसी प्रकार मालूम नहीं हो सकती जैसे आकाश में चिड़ियों की गति ।

यस्सासवा परिक्खीणा आहारे च अनिस्सितो ।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।
आकासे व सकुन्तानं पदं तस्स दुन्नयं ॥ ४ ॥

४—जिसकी वासना क्षीण हो गई है, जो भोजन के प्रति उदासीन है जिसने जीवन को अनित्य समझ कर मोक्ष प्राप्त करली है उसका पद उसी प्रकार अज्ञेय है जैसे चिड़ियों का मार्ग आकाश में।

यस्सिन्द्रियानि समथं गतानि
अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता ।
पहीनमानस्स अनासवस्स
देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो ॥ ५ ॥

५—जिसकी इद्रियां इस प्रकार वशीभूत हैं जैसे अच्छे रथवान के वश में घोड़े। जो अभिमान और वासना से मुक्त है उससे देवता भी डाह करते हैं।

पठवीसमो नो विरुज्झति
इन्दखीलूपमो तादि सुब्बतो ।
रहदो व अपेतकद्दमो
संसारा न भवन्ति तादिनो ॥ ६ ॥

६—उन लोगों के लिये संसार (पुनर्जन्म) नहीं होता जो पृथ्वी के समान सन्तोषी, खम्भे के समान निश्चल, और झील के समान निर्मल हैं।

सन्तं तस्स मनं होति सन्ता वाचा च कम्म च ।
सम्मदञ्ञा विमुत्तस्स उपसन्तस्स तादिनो ॥ ७ ॥

७—उसका मन शान्त है, उसकी वाणी तथा कर्म शान्त हैं। जो सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके मुक्त होगया और जिसको इस प्रकार शान्ति मिल गई।

अस्सद्धो अकतञ्ञू च सन्धिच्छेदो च यो नरो ।
हतावकासो वन्तासो स वे उत्तमपोरिसो ॥ ८ ॥

८—उत्तम पुरुष वह है जो अन्ध श्रद्धा नहीं रखता जो अकृत 'निर्वाण' को जानता है। जिसने सब सन्धियों को छेद दिया है जिसने पुनर्जन्म की सम्भावना को मिटा दिया है और जिसमें इच्छायें नहीं रही।

गामे वा यदि वारञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले ।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणेय्यकं ॥ ९ ॥

९—जहां अरहत रहते हैं वहीं भूमि रमणीक है चाहे गांव हो चाहे जंगल, चाहे जल हो चाहे थल।

रमणीयानि अरञ्ञानि यत्थ न रमती जनो ।
वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥ १० ॥

१०—जंगल रम्य हैं। जहां सांसारिक लोग सुख नहीं पाते वहां वीतराग पुरुष रमण करते हैं क्योंकि उनकी वासनायें नष्ट होगई हैं।

इति अरहन्तवग्गो सत्तमो

यह सातवां अध्याय अरहन्तवर्ग हुआ।

सहस्सवग्गो अठमो ।

आठवां अध्याय सहस्त्रवर्ग

सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसंहिता ।
एकं अत्थपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ १ ॥

१—हज़ार अनर्थक वाणियों से एक सार्थक शब्द अच्छा है जिस से शान्ति होती है ।

सहस्समपि चे गाथा अनत्थपदसंहिता ।
एकं गाथापदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ २ ॥

२—हज़ारों अनर्थक गाथाओं (गीतों) से एक गाथा अच्छी जिस को सुन कर शान्ति मिल सके ।

यो च गाथासतं भासे अनत्थपदसंहिता ।
एकं धम्मपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ ३ ॥

३—अनर्थक सैकड़ों गाथाओं के कहने से एक धर्म पद कहना अच्छा है जिसके सुनने से शान्ति मिलती है ।

यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने ।
एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो ॥ ४ ॥

४—उन लोगों से जो संग्राम में हज़ारों को जीतते हैं वह अच्छा है जो अपने आत्मा को जीत लेता है ।

अत्ता हवे जितं सेय्यो या चायं इतरा पजा ।
अत्तदन्तस्स पोसस्स निच्चं संयतचारिनो ॥ ५ ॥

५—अपने को जीतने वाला समस्त प्रजा को जीतने वाले से अच्छा है । जो पुरुष आत्मजित और नियमित आचार का है उस की विजय को कोई पराजित नहीं कर सकता, न देव, न गन्धर्व, न मार और न ब्रह्मा ।

नेव देवो न गन्धब्बो न मारो सह ब्रह्मुना ।
जितं अपजितं कयिरा तथारूपस्स जन्तुनो ॥ ६ ॥

६—यदि सौ वर्ष तक हजारों के मूल्य से मास मास कोई हवन करे तो वह इतना पूजनीय नहीं जितना वह जो एक क्षण आत्मजित की पूजा करे ।

मासे मासे सहस्सेन यो यजेथ सतं समं ।
एकं च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।
सा एव पूजना सेय्यो यञ्चे वस्ससतं हुतं ॥ ७ ॥

७—यदि कोई सौ वर्ष तक वन में अग्नि की परिचर्य्या करे । और दूसरा एक मुहूर्त आत्मजित की परिचर्य्या करे । तो सौ वर्ष आहुति देने वाले से यह अच्छा है ।

यो च वस्ससतं जन्तु अग्गिं परिचरे वने ।
एकं च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।
सा येव पूजना सेय्यो यञ्चे वस्ससतं हुतं ॥ ८ ॥

यं किञ्चि यिट्ठं व हुतं व लोके
मंवच्छरं यजेथ पुञ्ञपेक्खो ।
सब्बं पि तं न चतुभागमेति
अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्या ॥ ९ ॥

८—पुण्य को दृष्टि में रखकर साल भर तक जो कोई आहुति देता है वह सब इसके चौथे भाग के भी बराबर नहीं है कि ऋजु-गति वाले पुरुष का अभिवादन किया जाय।

अभिवादनसीलस्स निच्चं वद्धापचायिनो ।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं ॥१०॥

१०—अभिवादन शील और नित्य वृद्धों को पूजने वाले के चारों धर्म बढ़ते हैं—आयु, विद्या, सुख और बल।

यो च वस्ससतं जीवे दुस्सीलो असमाहितो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो सीलवन्तस्स झायिनो ॥११॥

११—एक दिन शील और ज्ञान के साथ जीना सौ वर्ष के दुश्शील और असमाहित जीवन से अच्छा है।

यो च वस्ससतं जीवे दुप्पञ्ञो असमाहितो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पञ्ञावन्तस्स झायिनो ॥१२॥

१२—एक दिन प्रज्ञा और दमन के साथ जीना सौ वर्ष तक के अज्ञान पूर्ण और असमाहित जीवन से अच्छा है।

यो च वस्ससतं जीवे कुसीतो हीनवीरियो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो विरियमारभतो दल्हं ॥१३॥

१२—सौ वर्ष के आलसी और हीन वीर्य जीवन की अपेक्षा एक दिन का दृढ़ कर्मण्यता का जीवन अच्छा है ।

यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं उदयव्ययं ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयव्ययं ॥१४॥

१३—उदय और अस्त को न देखने वाले सौ वर्ष के जीवन से उदय और अस्त को देखने वाले एक दिन का जीवन अच्छा है ।

यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं अमतं पदं ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो अमतम् पदं ॥१५॥

१४—अमृत पद को न देखने वाले सौ वर्ष के जीवन से अमृत पद को देखने वाले एक दिन का जीवन अच्छा है ।

यो च वस्ससतम् जीवे अपस्सं धम्ममुत्तमं ।
एकाहं जीवितम् सेय्यो पस्सतो धम्ममुत्तमं ॥१६॥

१५—उत्तम धर्म को न देखने वाले सौ वर्ष के जीवन से एक दिन का उत्तम धर्म का देखने वाला जीवन अच्छा है ।

इति सहस्सवग्गो अट्ठमो ।

यह आठवां अध्याय सहस्रवर्ग हुआ ।

पाप वग्गो नवमो ।

नवां अध्याय पाप वर्ग

अभित्थरेथ कल्याणे पापा चित्तं निवारये।
दन्धं हि करोतो पुञ्ञं पापस्मिं रमती मनो ॥ १ ॥

१—जल्दी जल्दी कल्याण करता हुआ मन को पाप से हटावे। सुस्ती से पुण्य करते हुये पुरुष का मन पाप में रमण करता है।

पाप चे पुरिसो कयिरा न तं कयिरा पुनप्पुनं।
न तम्हि छन्दं कयिराथ दुक्खो पापस्स उच्चयो ॥ २ ॥

२—कोई पाप करके पुरुष को फिर उसको दुहराना नहीं चाहिये। पाप में कभी मन न लगाओ। पाप का समुच्चय दुःख-दायी होता है।

पुञ्ञं चे पुरिसो कयिरा कयिराथेतम् पुनप्पुनं।
तम्हि छन्दं कयिराथ सुखो पुञ्ञस्स उच्चयो ॥ ३ ॥

३—पुण्य के करने वाले को पुण्य फिर फिर दुहराना चाहिये। पुण्य में सदा मन लगाना चाहिये। पुण्य का समुच्चय अच्छा होता है।

पापोऽपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं अथ पापो पापानि पस्सति ॥ ४ ॥

३—पापी को भी उसी समय तक कल्याण प्रतीत होता है। जब तक पाप का फल उदय नहीं होता (पाप पकता नहीं)। परन्तु जब पाप पकने लगता है तो पापी को पाप दिखाई पड़ जाता है।

भद्रोऽपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति।
यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रो भद्रानि पस्सति ॥ ५ ॥

५—भद्र पुरुष को उसी समय तक बुरा मालूम होता है जब तक पुण्य पकता नहीं अर्थात् पुण्य का फल उदय नहीं होता। जब पुण्य पकने लगता है तो भद्र पुरुष को भला ही भला दिखाई पड़ता है।

माप्पमञ्ञेथ पापस्स न मं तं आगमिस्सति।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोऽपि पूरति।
पूरति बालो पापस्स थोकं थोकं पि आचिनं ॥ ६ ॥

६—पाप का यह समझ कर तिरस्कार न करो कि वह मेरे पास न आयेगा। एक एक बूंद पानी से घड़ा भी भर जाता है। मूर्ख पाप से पूरित हो जाता है यदि वह थोड़ा थोड़ा पाप भी इकट्ठा करता है।

माप्पमञ्ञेथ पुञ्ञस्स न मं तं आगमिस्सति।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोऽपि पूरति।
पूरति धीरो पुञ्ञस्स थोकथोकं पि आचिनं ॥ ७ ॥

७—पुण्य का यह समझकर तिरस्कार न करो कि वह

मेरे पास न आवेगा। एक एक बूंद से घड़ा भरता है। धीर पुरुष का पुण्य थोड़ा थोड़ा इकट्ठा होकर पूरा हो जाता है।

वाणिजो व भयं मग्गं अप्पसत्थो महद्धनो।
विसं जीवितुकामो व पापानि परिवज्जये॥ ८॥

८—वह व्यापारी जिसके पास धन अधिक है और साथी कम है डर वाले रास्ते पर नहीं चलता। जीने की इच्छा करने वाला विष को ग्रहण नहीं करता। इसी प्रकार मनुष्य को चाहिये कि पापों से घृणा करे।

पाणिम्हि चे वणो नास्स हरेय्य पाणिना विसं।
नाब्बणं विसमन्वेति नत्थि पापं अकुब्बतो॥ ९॥

९—जिसके हाथ में घाव नहीं है वह उस हाथ में विष रख सकता है। जिसने पाप नहीं किया उसके लिये कोई भी विषम अर्थात आपत्ति नहीं है।

यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स।
तमेव बालं पच्चेति पापं सुखुमो रजो पटिवातं व खित्तो॥१०॥

१०—जो शुद्ध, पवित्र और निर्दोष पुरुष को दुख देता है, पाप उसी मूर्ख को लगता है, जैसे वायु के प्रति फेंकी हुई धूल अपने ही ऊपर आ पड़ती है।

गब्भमेके उपज्जन्ति निरयं पापकम्मिनो।
सग्गं सुगतिनो यन्ति परिनिब्बन्ति अनासवा॥११॥

११—कुछ लोग फिर गर्भ में उत्पन्न होते हैं। पापी नरक को जाते हैं। अच्छी गति वाले स्वर्ग को जाते हैं। इच्छा से मुक्त लोग निर्वाण पद को प्राप्त करते हैं।

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे

न पब्बतानं विवरं पविस्स।

न विज्जती सो जगतिप्पदेसो

यत्रट्ठितो मुच्चेय्य पापकम्मा ॥१२॥

१२—न अन्तरिक्ष में, न समुद्र में, न पर्वतों की खोह में कोई ऐसी जगह है जहाँ बैठ कर पापी अपने किये हुये पापों से बच सके।

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे

न पब्बतानं विवरं पविस्स।

न विज्जती सो जगतिप्पदेसो

यत्रट्ठितं नप्पसहेथ मच्चु ॥ १३ ॥

१३—न अन्तरिक्ष में, न समुद्र के बीच में, न पर्वतों की खोह में कोई ऐसी जगह है जहाँ बैठकर मनुष्य तक मृत्यु नहीं पहुँचती।

इति पापवग्गो नवमो।

यह नवाँ अध्याय पापवर्ग हुआ।

दण्ड वग्गो दसमो

दसवां अध्याय दण्ड वर्ग

सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बे भायन्ति मच्चुनो।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये॥ १॥

१—दण्ड से सब कांपते हैं। मौत से सब डरते हैं। अपने आत्मा के तुल्य सब को समझकर न किसी को मारो न मरवाओ।

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये॥ २॥

२—सब दण्ड से कांपते हैं। सबको जीवन प्यारा है। इसलिये आत्मा के तुल्य सबको जानकर न किसी को मारो और न मरवाओ।

सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं॥ ३॥

३—सुख चाहने वाले प्राणियों को जो अपने सुख के लिये पीड़ा देता है वह मृत्यु के पश्चात् सुख को प्राप्त नहीं करता।

सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुखं॥ ४॥

४—सुख चाहने वाले प्राणियों को जो अपने सुख के लिये पीड़ा नहीं देता वह मृत्यु के पश्चात् सुख नहीं प्राप्त करता।

मा वोच फरुसं कञ्चि वुत्ता पटिवदेय्यु नं ।
दुक्खा हि सारम्भकथा पटिदण्डा फुसेय्यु नं ॥ ५ ॥

५—किसी से कटु न बोलो। क्योंकि वह भी तुमसे उसी प्रकार बोलेंगे। झगड़े से दुःख होता है। ऐसों को दण्ड मिलता है।

सचे नेरेसि अत्तानं कंसो उपहतो यथा ।
एस पत्तोऽसि निब्बाणं सारम्भो ते न विज्जति ॥ ६ ॥

६—यदि पीटे हुये कांसे के समान तू स्वयं चुप रहे तो निर्वाण प्राप्त करेगा। और तुझे झगडा न सतायेगा।

यथा दण्डेन गोपालो गावो पाचेति गोचरं ।
एवं जरा च मच्चु च आयुम् पाचेन्ति पाणिनं ॥ ७ ॥

७—जैसे ग्वाला डण्डे से गायों को चरागाह की ओर हाँकता है उसी प्रकार बुढ़ापा और मौत प्राणियों की आयु को हाँकती है।

अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुज्झति ।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो अग्गिदड्ढो व तप्पति ॥ ८ ॥

८—अज्ञानी पाप कर्म को करता हुआ समझता नहीं। दुष्ट अपने ही कर्मों द्वारा अग्नि दग्ध के समान जलाया जाता है।

यो दण्डेन अदण्डेसु अप्पदुट्ठेसु दुस्सति ।
दसन्नमञ्ञतरं ठानं खिप्पमेव निगच्छति ॥ ९ ॥

९—जो दण्ड न देने योग्य और निर्दोष मनुष्यों को दुख देता है वह शीघ्र ही इन दस में से एक अवस्था को प्राप्त होता है।

वेदनं फरुसं जानिं सरीरस्स च भेदनं।
गरुकं वा पि आबाधं चित्तक्खेपं व पापुणे ॥ १० ॥
राजतो वा उपस्सग्गं अब्भक्खानं व दारुणं।
परिक्खयं व ञातीनं भोगानं व पभङ्गुरं ॥ ११ ॥
अथवस्स अगारानि अग्गि डहति पावको।
कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो निरयं सो उपपज्जति ॥ १२ ॥

१०,११,१२—(१) वेदना (२) हानि (३) शरीर का भेदना या काटा जाना (४) रोग (५) चित्तविक्षेप (पागलपन)। (६) राज दरबार में तलबी, (७) दारुण अपयश (८) जाति से च्युत होना (९) धन का क्षय (१०) घर का अग्नि द्वारा जलाया जाना। शरीर त्याग के पीछे वह पुरुष नरक को जायगा।

न नग्गचरिया न जटा न पंका
नानासका थण्डिलसायिका वा।
रजो च जल्लं उक्कुटिकप्पधानं।
सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकङ्खं ॥ १३ ॥

१३—न नग्न रहने से, न जटा से, न मैल, से, न उपवास से, न भूमि पर लेटने से, न धूलि से, न भिन्न भिन्न आसनों से वह पुरुष पवित्र हो सकता है जो तृष्णा के बन्धन से नहीं छूटा।

अलंकतो च पि समं चरेय्य
सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी ।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं
सो ब्राह्मणो समणो स भिक्खु ॥ १४ ॥

१४—जो कपड़ों से अलंकृत हुआ भी शान्त है, दमन करता है, नियमित रहता है और ब्रह्मचारी है तथा किसी प्राणी को दण्ड नहीं देता वही ब्राह्मण है, वही श्रमण है वही भिक्षु है ।

हिरीनिसेधो पुरिसो कोचि लोकस्मिं विज्जति ।
यो निन्दं अप्पबोधति अस्सो भद्रो कसामिव ॥ १५ ॥

१५—क्या इस संसार में कोई ऐसा अपने को वश में रखने वाला पुरुष है जो अपयश को सुनकर बुरा नहीं मानता जैसे सुशिक्षित घोड़ा चाबुक को ।

अस्सो यथा भद्रो कसानिविट्ठो
आतापिनो संवेगिनो भवाथ ।
सद्धाय सीलेन च विरियेन च
समाधिना धम्मविनिच्छयेन च ।
सम्पन्नविज्जाचरणा पतिस्सता
पहस्सथ दुक्खमिदं अनप्पकं ॥ १६ ॥

जिस प्रकार शिक्षित घोड़ा कोड़े से उसी प्रकार तुम भी कर्मशील, और आनन्दित रहो । श्रद्धा, शील, वीर्य्य, समाधि तथा धर्म

निश्चय में विद्याचरण करने तथा प्रतिष्ठित होते हुये तुम इस दुःख को जीत सकोगे।

उदकं हि नयन्ति नेत्तिका उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका अत्तानं दमयन्ति सुब्बता ॥ १७॥

१७—कुआँ बनाने वाले पानी को (जहाँ चाहते हैं वहाँ) ले जाते हैं तीर बनाने वाले तीर को जैसा चाहते हैं बनाते हैं। बढ़ई लकड़ी को नमाते हैं और श्रेष्ठ पुरुष अपनी आत्मा का दमन करते हैं।

इति दण्ड वग्गो दसमो।
यह दसवाँ दण्डवर्ग समाप्त हुआ।

जरावग्गो एकादसमो

ग्यारहवां अध्याय जरावर्ग

को नु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति ।
अंधकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ॥ १ ॥

१—नित्य जलते हुये और अन्धकार से युक्त संसार में हंसना और आनन्द मनाना कैसा ? क्यों नहीं प्रकाश की तलाश करते ?

पस्स चित्तकतं बिम्बं अरुकायं समुस्सितं ।
आतुरं बहुसङ्कप्पं यस्स नत्थि धुवं ठिति ॥ २ ॥

२—इस चित्तकृत (कल्पित) आकृति को देखो जो घायल और जुड़ी हुई, आतुर और बहु संकल्प हैं । और जिसमें कोई सुदृढ़ता नहीं है ।

परिजिण्णमिदं रूपं रोगनिड्डं पभङ्गुरं ।
भिज्जति पूतिसंदेहो मरणन्तं हि जीवितं ॥ ३ ॥

३—यह शरीर रोगों का अड्डा और क्षण भङ्गुर है । यह पाप का समूह टूट जाता है । जीवन का अन्त ही मरना है ।

यानि मानि अपत्थानि अलापूनेव सारदे ।
कापोतकानि अट्ठीनि तानि दिस्वान का रति ॥ ४ ॥

४—शरद ऋतु में लौकियों (तरकारी विशेष) के समान जो

इन सफेद हड्डियों को बिखरा हुआ देखता है उसको कैसे सुख मिल सकता है।

अट्ठीनं नगरं कतं मंसलोहितलेपनं।
यत्थ जरा च मच्चु च मानो मक्खो च ओहितो ॥ ५ ॥

५—यह हड्डियों का नगर है जिस पर मांस और रुधिर का लेपन है। बुढ़ापा और मौत मान और मत्सर जिसके पहरेदार हैं।

जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता
अथो सरीरं पि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति
सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति ॥ ६ ॥

६—जैसे सुचित्रित राजरथ पुराने हो जाते हैं। इसी प्रकार शरीर भी पुराना हो जाता है। परन्तु धर्म बुड्ढा नहीं होता। सन्त लोग सन्तों को धर्म का उपदेश करते हैं।

अप्पस्सुतायं पुरिसो बलिवद्दो व जीरति।
मंसानि तस्स वड्ढन्ति पञ्ञा तस्स न वड्ढति ॥ ७ ॥

७—मूर्ख बैल के समान बढ़ता है। उसका मांस तो बढ़ जाता है परन्तु ज्ञान नहीं बढ़ता।

अनेकजातिसंसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं ॥ ८ ॥

८—मैंने गृहकार अर्थात् शरीर बनाने वाले को ढूंढते और

उसको न पाते हुये अनेक जन्म जन्मान्तर भोगे। फिर फिर जन्म लेना दुख का हेतु है।

गहकारक दिट्ठोऽसि पुन गहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसङ्खितं।
विसङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा॥ ९॥

९—हे गृहकार अब तू मिल गया। अब फिर इस घर को मत बनाना। सब कड़ियां टूट गई। गृहकूट (खम्भा) उखड़ गया। मेरा निर्वाण पर ध्यान है। तृष्णायें समाप्त हो गई।

अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनम्।
जिण्णकोञ्चा व झायन्ति खीणमच्छे व पल्लले॥१०॥

१०—जो ब्रह्मचारी नहीं रहे या जिन्होंने जवानी में धन का लाभ नहीं किया वह बुड्ढे सारसों के समान मछली के खाली तालाब में मर जाते हैं।

अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनम्।
सेन्ति चापा तिखीणा व पुराणानि अनुत्थुनम्॥११॥

११—जो ब्रह्मचारी नहीं रहे या जिन्होंने जवानी में धन नहीं कमाया वह टूटे हुये धनुषों के समान पड़े रहते हैं और पुराने ज़माने की याद करते रहते हैं।

इति जरावग्गो एकादसमो।

यह ग्यारहवां अध्याय जरावर्ग हुआ।

अत्तवग्गो द्वादसमो

बारहवां अध्याय आत्मवर्ग

अत्तानञ् चे पियं जञ्ञा रक्खेय्य नं सुरक्खितं ।
तिण्णमञ्ञतरं यामं पटिजग्गेय्य पण्डितो ॥ १ ॥

१—जो अपनी आत्मा को प्रिय समझता है उसको चाहिये कि आत्मा की रक्षा करे। पण्डित को चाहिये कि रात के तीन पहरों में से एक में खबरदार रहे।

अत्तानमेव पठमं पतिरूपे निवेसये ।
अथञ्ञमनुसासेय्य न किलिस्सेय्य पण्डितो ॥ २ ॥

२—अपनी आत्मा को पहले यथार्थता में लगावे। तब दूसरों को शिक्षा दे। इस प्रकार पण्डित कभी हानि न उठावेगा।

अत्तानञ् चे तथा कयिरा यथञ्ञमनुसासति ।
सुदन्तो वत दमेथ अत्ता हि किर दुद्दमो ॥ ३ ॥

३—जो अपनी आत्मा को उसी प्रकार चलाते हैं जैसा वह दूसरों को उपदेश देते हैं वह उनको भली भाँति वश में कर लेते हैं। आत्मा को वश में करना ही दुस्तर है।

अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया ।
अत्तना हि सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ॥ ४ ॥

४—आत्मा ही आत्मा का सहायक है। अन्य कौन सहायक है ? आत्मदमन से मनुष्य दुर्लभ सहायता प्राप्त कर लेता है।

अत्तना व कतं पापं अत्तजं अत्तसम्भवं।
अभिमन्थति दुम्मेधं वजिरं वम्हमयं मणिं ॥ ५ ॥

५—जिस प्रकार मणि (साँप का) उस स्थान को नाश कर देता है जहाँ वह बनता है इसी प्रकार आत्मा से उत्पन्न हुआ पाप आत्मा को नाश कर देता है।

यस्स अच्चन्तदुस्सील्यं मालुवा सालमिवोततं।
करोति सो तथत्तानम् यथा नं इच्छती दिसो ॥ ६ ॥

६—जिस प्रकार अमर बेल (लता) उस वृक्ष को जिस पर वह चढ़ी हुई है नाश कर देती है इसी प्रकार दुःशील मनुष्य अपनी आत्मा को उस अवस्था तक गिरा देता है जिस तक उसको शत्रु चाहता है।

सुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च।
यं वे हितं च साधुम् च तं वे परमदुक्करं ॥ ७ ॥

७—असाधु और आत्मा को हानि पहुँचाने वाले कर्म आसान हैं। हित करने वाले और शुभकर्म बहुत कठिन हैं।

यो सासनं अरहतं अरियानं धम्मजीविनं।
पटिक्कोसति दुम्मेधो दिट्ठि निस्साय पापिकं ॥
फलानि कट्ठकस्सेव अत्तघञ्ञाय फल्लति ॥ ८ ॥

८—जो आर्य्य और धर्मजीवी अर्हत के शासन के प्रतिकूल चलकर पापी मार्ग का अवलम्बन करता है वह उस कट्ठक वंश के समान है जिसका फल उसी को नाश कर देना है।

अत्तना व कतं पापं अत्तना संकिलिस्सति।
अत्तना अकतं पापं अत्तना व विसुज्झति।
सुद्धि असुद्धि पच्चत्तं नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये ॥ ९ ॥

९—तू अपने किये पापों से अपने को ही गिराता है। अपने ही छोड़े हुये पाप से तू शुद्ध होता है। शुद्धि और अशुद्धि अपनी ही है। अन्य अन्य को शुद्ध नहीं कर सकता।

अत्तदत्थं परत्थेन बहुनापि न हापये।
अत्तदत्थमभिञ्ञाय सदत्थपसुतो सिया ॥१०॥

१०—अपने अर्थ को पराये बड़े अर्थ के लिये न छोड़े। अपने अर्थ को भली प्रकार समझकर उसके पालन करने में दत्तचित्त रहे।

इति अत्तवग्गो द्वादसमो

यह बारहवाँ अध्याय आत्मवर्ग हुआ।

लोक वग्गो तेरसमो

तेरहवां अध्याय लोकवर्ग

हीनं धम्मं न सेवेय्य पमादेन न संवसे।
मिच्छादिट्ठिं न सेवेय्य न सिया लोकवड्ढनो ॥ १ ॥

१—हीन धर्म का सेवन न करे। प्रमाद से न जिये। झूठी बातों का सेवन न करे। लोक का मित्र न हो अर्थात् लोक की इच्छा न करे।

उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मि लोके परम्हि च ॥ २ ॥

२—उठ, प्रमाद न कर। अच्छे धर्म का पालन कर। धर्मात्मा इस लोक और परलोक दोनों में सुख से रहता है।

धम्मं चरे सुचरितं न तं दुच्चरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च ॥ ३ ॥

३—सुचरित्र धर्म में चल, अधर्म में मत चल। धर्मात्मा इस लोक और परलोक दोनों में सुख पाता है।

यथा बुब्बुलकं पस्से यथा पस्से मरीचिकं।
एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सति ॥ ४ ॥

४—इस लोक को बुलबुले के समान या मरीचिका (मृग

तृष्णिका) के समान समझ। ऐसा समझने वाले को मौत का राजा (यम) नहीं देखता।

एथ पस्सथिमं लोकं चित्तं राजरथूपमं।
यत्थ बाला विसीदन्ति नत्थि सगो विजानतं॥ ५॥

५—आ और इस लोक को चित्रित राजरथ के समान जान। जहां मूर्ख डूब जाते हैं और ज्ञानी जिसको छूते तक नहीं।

यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो नप्पमज्जति।
सोमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो व चन्दिमा॥ ६॥

६—जो पहले प्रमाद में था और अब प्रमाद से निकल गया वह इस लोक को इस प्रकार प्रकाशित करता है जैसे बादलों में से निकला हुआ चन्द्रमा।

यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिथीयति।
सोमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो व चन्दिमा॥ ७॥

७—जो अपने किये हुये पापों को पुण्य से छिपा लेता है वह इस लोक को इस प्रकार प्रकाशित करता है जैसे बादलों से निकला हुआ चन्द्रमा।

अन्धभूतो अयं लोको तनुकेत्थ विपस्सति।
सकुन्तो जालमुत्तो व अप्पो सग्गाय गच्छति॥ ८॥

८—यह लोक अन्धा है। विरले ही देखते हैं। विरली चिड़ियाँ ही हैं जो जाल में न फंसे। विरली ही स्वर्ग को जाती हैं।

हंसा आदिच्चपथे यन्ति आकासे यन्ति इद्धिया ।
नीयन्ति धीरा लोकम्हा जेत्वा मारं सवाहनं ॥ ९ ॥

९—हंस आदित्य पथ में चलते हैं । वे अपनी शक्ति से आकाश में चलते हैं । धीर लोग जब मार को वाहन सहित मार लेते हैं तब इस संसार से मुक्त होते हैं ।

एकं धम्मं अतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो ।
वितिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं ॥ १० ॥

१०—जिसने धर्म छोड़ दिया । झूठ बोलता है । परलोक की हँसी उड़ाता है वह क्या कुछ पाप न कर सकेगा ।

न वे कदरिया देवलोकं वजन्ति
बाला हवे नप्पसंसन्ति दानं ।
धीरो च दानं अनुमोदमानो
तेनेव सो होति सुखी परत्थ ॥ ११ ॥

११—कंजूस देव लोक को नहीं जाते । मूर्ख ही दान की प्रशंसा नहीं करते । धीर लोग दान का अनुमोदन करते हुये ख़ुश ख़ुश परलोक को जाते हैं ।

पथव्या एकरज्जेन सग्गस्स गमनेन वा ।
सब्बलोकाधिपच्चेन सोतापत्तिफलं वरं ॥ १२ ॥

१२—पृथिवी पर राज करना अच्छा है । स्वर्ग को जाना

अच्छा है। सब लोकों का आधिपत्य अच्छा है। परन्तु इनसे भी अच्छा है सोतापत्तिफल अर्थात निर्वाण के चार साधनों में से पहला साधन करना। (१ सोतापन्न २ सकदागामी ३ अनागामी ४ अरहत)।

इति लोक वग्गो तेरसमो।

यह तेरहवां लोकवर्ग समाप्त हुआ।

बुद्ध वग्गो चतुद्दसमो

चौदहवां अध्याय बुद्धवर्ग

यस्स जितं नावजीयति जितमस्स नोयाति कोचि लोके ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ॥ १ ॥

१—जिसके जीते हुये को कोई जीत नहीं सकता, जिसके जीते हुये में कोई प्रवेश नहीं कर सकता उस अनन्तगोचर (अनन्त ज्ञान वाले) अपद (जिसका कोई रास्ता नहीं है) बुद्ध को किस पद (मार्ग) से ले जा सकते हो ?

यस्स जालिनी विसत्तिका तण्हा नत्थि कुहिञ्चि नेतवे ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ॥ २ ॥

२—जिसको जाल फैलाने वाली विष-युक्त तृष्णा बहका नहीं सकती उस अनन्तगोचर अपद बुद्ध को किस पद से ले जा सकते हो ।

ये झानपसुता धीरा नेक्खम्मूपसमे रता ।
देवा पि तेसं पिहयन्ति सम्बुद्धानं सतीमतं ॥ ३ ॥

३—देवता भी उन लोगों का डाह करते हैं जो धीर पुरुष ज्ञानी, तथा नैष्कर्म और उपशम में रत हैं । जो जगे हुये तथा उत्कृष्ट हैं ।

किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छं मच्चान जीवितं ।
किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानमुप्पादो ॥ ४ ॥

४—मनुष्य-जन्म कठिन है, मृत्युवाला जीवन कठिन है । सच्चे धर्म का सुनना कठिन है और बुद्धों का उठना कठिन है ।

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा ।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं ॥ ५ ॥

५—सब पापों को छोड़ो । अच्छी बातों का सम्पादन करो । अच्छे विचारों को धारण करो । यही बुद्धों की शिक्षा है ।

खन्ती परमं तपो तितिक्खा
निब्बाणं परमं वदन्ति बुद्धा ।
न हि पब्बजितो परूपघाती
समणो होति परं विहेठयन्तो ॥ ६ ॥

६—बुद्ध लोग शान्ति को परमतप और तितिक्षा (पीड़ा सहन करना) को परम निर्वाण कहते हैं । जो दूसरे को सताता है वह साधु नहीं और जो दूसरे को दुःख देता है वह श्रमण नहीं ।

अनूपवादो अनूपघातो पातिमोक्खे च संवरो ।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं पन्तं च सयनासनं ।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान सासनं ॥ ७ ॥

७—बुद्धों की शिक्षा यह है (१) अपवाद न करो (२) किसी

को न मारो (३) दमन करके रहो (४) कम खाओ (५) एकान्त में वास करो (६) और अच्छे विचार रक्खो।

न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति।
अप्पस्सादा दुक्खा कामा इति विञ्ञाय पण्डितो ॥८॥

८—सोने की वर्षा से कामना की तृप्ति नहीं होती। पण्डित वही है जो जानता है कि कामनायें अल्पस्वाद वाली और दुख देने-वाली होती हैं।

अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति।
तण्हक्खयरतो होति सम्मासम्बुद्धसावको ॥ ९ ॥

९—बुद्ध का अनुयायी दिव्य कामनाओं में भी सुख नहीं प्राप्त करता। परन्तु उसका प्रयत्न तो तृष्णा के नष्ट करने में होता है।

बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च।
आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता ॥ १० ॥

१०—भय से पीड़ित लोग बहुधा पर्वतों, वनों, बागों और पवित्र वृक्षों की शरण जाते हैं।

नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥ ११ ॥

११—परन्तु यह क्षेम-युक्त शरण नहीं है। यह उत्तम शरण नहीं है। इस शरण को पाकर मनुष्य सब दुखों से नहीं छूटता।

यो च बुद्धं च धम्मं च संघं च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति ॥ १२ ॥

१२—जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लेता है उसको चार श्रेष्ठ सच्चाइयों का सम्यक ज्ञान हो जाता है।

दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ॥ १३ ॥

१३—दुख, दुख का कारण, दुख की निवृत्ति और श्रेष्ठ आठ मार्ग जिनसे शान्ति मिलती है यही चार सचाइयाँ हैं।

एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥ १४ ॥

१४—यही क्षेमयुक्त शरण है। यही उत्तम शरण है। इसी शरण को पाकर मनुष्य सब दुखों से छूटता है।

दुल्लभो पुरिसाजञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति।
यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति ॥ १५ ॥

१५—श्रेष्ठ पुरुष को पाना कठिन है। वह हर जगह जन्म नहीं लेता। वह कुल धन्य है जहाँ ऐसा धीर उत्पन्न होता है।

सुखो बुद्धानमुप्पादो सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा संघस्स सामग्गी समग्गानं तपो सुखो ॥ १६ ॥

१६—बुद्धों का उठना धन्य है, सद्धर्म पर चलना धन्य है।

संघ की एकता धन्य है। उनका तप धन्य है जो एक साथ मिलकर रहते हैं।

पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके।
पपञ्चसमतिक्कन्ते तिण्णसोकपरिद्दवे ॥ १७ ॥
ते तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये।
न सक्का पुञ्ञं सङ्खातुं इमेत्तमपि केनचि ॥ १८ ॥

१७,१८—जो पूजा के योग्य पुरुषों की पूजा करता है चाहे वे बुद्ध हों या बुद्धों के शिष्य, जिन्होंने प्रपञ्च को छोड़ दिया और तृष्णा के समुद्र को पार कर लिया, जो निर्वाण प्राप्त तथा अभय लोगों की पूजा करता है, उस पुरुष का पुण्य संख्या से बाहर अर्थात् अनन्त है।

इति बुद्धवग्गो चतुद्दसमो।

चौदहवां बुद्ध वर्ग समाप्त हुआ।

पठमकभाणवारं निट्ठितं।

यह पहला प्रकरण समाप्त हुआ।

सुखवग्गो पण्णरसमो

पन्द्रहवां अध्याय सुखवर्ग

सुसुखं वत जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो ।
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो ॥ १ ॥

१—हम सुख से जीवें, वैरियों से वैर न करें । जो हम से वैर करते हैं उन मनुष्यों में वैर रहित होकर रहें ।

सुसुखं वत जीवाम आतुरेसु अनातुरा ।
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा ॥ २ ॥

२—हम सुख से जीवें, आतुर (दुखी) पुरुषों में आतुर न होकर । आतुरों में अनातुर होकर विचरें ।

सुसुखं वत जीवाम उस्सुकेसु अनुस्सुका ।
उस्सुकेसु मनुस्सेसु विहराम अनुस्सुका ॥ ३ ॥

३—हम सुख से जीवें । इच्छा वालों में इच्छा रहित होकर । इच्छा वाले मनुष्यों में इच्छा रहित होकर जीवें ।

सुसुखं वत जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं ।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा ॥ ४ ॥

४—हम सुख से जीवें, पास कुछ न रखते हुये । जैसे देवता

अपने ही प्रकाश में आनन्दित रहते हैं उसी प्रकार हम भी प्रीति को ही अपना लक्ष्य समझें।

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं॥ ५॥

५—जय से वैर पैदा होता है क्योंकि पराजित पुरुष दुखी होता है। जो जय और पराजय को छोड़ देता है वही सुखी होता है।

नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो कली।
नत्थि खन्धादिसा दुक्खा नत्थि सन्तिपरं सुखं॥ ६॥

६—राग के समान कोई आग नहीं, द्वेष के समान कोई हारने वाला पासा नहीं। स्कन्ध या शरीर के समान कोई दुख नहीं, शान्ति के समान सुख नहीं।

जिघच्छापरमा रोगा सङ्खारपरमा दुखा।
एतं ञत्वा यथाभूतं निब्बाणं परमं सुखं॥ ७॥

७—भूख परम रोग है, शरीर सब से बड़ा दुख है, इस बात को ठीक ठीक समझ ले। निर्वाण ही परम सुख है।

आरोग्यपरमा लाभा सन्तुट्ठि परमं धनं।
विस्सासपरमा ञाति निब्बाणं परमं सुखं॥ ८॥

८—आरोग्य परम लाभ है, सन्तोष परम धन है। विश्वासी पुरुष ही परम बन्धु है, निर्वाण ही परम सुख है।

पविवेकरसं पीत्वा रसं उपसमस्स च।
निद्दरो होति निप्पापो धम्मपीतिरसं पिवं ॥ ९ ॥

९—विवेक और उपशम के रस को पीकर मनुष्य निडर और निष्पाप हो जाता है और धर्म के रस को पीता है।

साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो।
अदस्सनेन बालानं निच्चमेव सुखी सिया ॥ १० ॥

१०—आर्यों का दर्शन अच्छा है। उनके साथ रहना सुखकारक है। मूर्खों के अदर्शन (अलग रहने) से मनुष्य सचमुच सुखी होता है।

बालसङ्गतचारी हि दीघमद्धानं सोचति।
दुक्खो बालेहि संवासो अमित्तेनेव सब्बदा।
धीरो च सुखसंवासो ञातीनं व समागमो ॥ ११ ॥

११—मूर्खों की संगति मे रहने वाला बहुत दिनों तक सोच में रहता है। मूर्खों की संगति शत्रुओं की संगति के समान सदा दुखदायी होती है। धीर पुरुषों की संगति रिश्तेदारों की संगति के समान सुखदायी होती है।

तस्मा हि

धीरं च पञ्ञं च बहुस्सुतं च
धोरय्हसीलं वतवन्तमरियं।

तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेध
भजेथ नक्खत्तपथं व चन्दिमा ॥ १२ ॥

१२—इसलिये, धीर, बुद्धिमान, पढ़े लिखे, शील युक्त और आर्य्य का संग करो। जिस प्रकार चन्द्रमा नक्षत्रों के मार्ग पर चलता है इसी प्रकार सत् पुरुष और ज्ञानी का अनुसरण करो।

इति सुखवग्गो पण्ण दसमो।
यह पन्द्रहवाँ सुखवर्ग हुआ।

पियवग्गो सोलसमो ।

सोलहवां अध्याय प्रियवर्ग

अयोगे युञ्जमत्तानं योगस्मिं च अयोजयं ।
अत्थं हित्वा पियग्गाही पिहेतत्तानुयोगिनं ॥ १ ॥

१—जो पुरुष अपने को अयोग में लगाता और योग में नहीं लगाता है और सुखों में फंसा हुआ है वह अपने लाभ को त्याग कर उन लोगों का डाह करता है जो योग में लगे हुये हैं ।

मा पियेहि समागञ्छि अप्पियेहि कुदाचनं ।
पियानं अदस्सनं दुक्खं अप्पियानं च दस्सनं ॥ २ ॥

२—प्रिय और अप्रिय की परवाह न करो क्योंकि प्रिय का न देखना दुःख है और अप्रिय का देखना दुःख है ।

तस्मा पियं न कयिराथ पियापायो हि पापको ।
गन्था तेसं न विज्जन्ति येसं नत्थि पियाप्पियं ॥ ३ ॥

३—इसलिये किसी को प्रिय न समझो । प्रिय का नष्ट होना ही दुःख है । जिसका न कुछ प्रिय है न अप्रिय उसके लिये कोई बन्धन नहीं है ।

पियतो जायती सोको पियतो जायती भयं ।
पियतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥ ४ ॥

४—राग से शोक होता है। राग से डर होता है। जो राग रहित है उसको न शोक है न डर।

पेमतो जायती सोको पेमतो जायती भयं।
पेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं॥ ५॥

५—प्रेम से शोक होता है। प्रेम से भय होता है। प्रेम से मुक्त पुरुष को न शोक है न भय।

रतिया जायती सोको रतिया जायती भयं।
रतिया विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं॥ ६॥

६—रति से शोक होता है, रति से भय होता है। रति से मुक्त पुरुष को न शोक है न भय।

कामतो जायती सोको कामतो जायती भयं।
कामतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं॥ ७॥

७—काम से शोक होता है। काम से भय होता है। काम से मुक्त पुरुष को न शोक है न भय।

तण्हाय जायती सोको तण्हाय जायती भयं।
तण्हाय विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं॥ ८॥

८—तृष्णा से शोक होता है। तृष्णा से भय होता है। तृष्णा से मुक्त पुरुष को न शोक है न भय।

सीलदस्सनसम्पन्नं धम्मट्ठं सच्चवादिनं।
अत्तनो कम्म कुब्बानं तं जनो कुरुते पियं॥ ९॥

९—आदमी उस को प्यार करते हैं जो शीलवान, ज्ञानी, धर्मात्मा और सत्यवादी है और अपने ही काम में लगा रहता है अर्थात् और के काम में दखल नहीं देता।

छन्दजातो अनक्खाते मनसा च फुटो सिया।
कामेसु च अप्पटिबद्धचित्तो उद्धंसोतो ति वुच्चति ॥ १० ॥

१०—वही अच्छा तैराक है और धारा के सम्मुख तैर सकता है जो अक्षय (निर्वाण) से चित्त लगाता है। जिसका मन पूरा है और जिसके विचार काम से दूषित नहीं हैं।

चिरप्पवासिं पुरिसं दूरतो सोत्थिमागतं।
ञातिमित्ता सुहज्जा च अभिनन्दन्ति आगतं ॥ ११ ॥

११—देर तक यात्रा करने वाले और दूर से सुरक्षित घर आये हुये पुरुष को सम्बन्धी, और सुहृद अभिनन्दन करते हैं।

तथेव कतपुञ्ञं पि अस्मा लोका परं गतं।
पुञ्ञानि पटिगण्हन्ति पियं ञाती व आगतं ॥ १२ ॥

१२—इसी प्रकार पुण्य कर्म उसका स्वागत करते हैं जो इस लोकसे परलोक को जाता है उसी भांति जैसे सम्बन्धी और मित्र वापिस आये हुये यात्री को।

इति पियवग्गो सोलसमो।

यह सोलहवां प्रियवर्ग हुआ।

कोधवग्गो सत्तरसमो ।

सतरहवां अध्याय क्रोधवर्ग

कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं
संयोजनं सब्बमतिक्कमेय्य ।
तं नामरूपस्मिं असज्जमानं
अकिञ्चनं नानुपतन्ति दुक्खा ॥ १ ॥

१—क्रोध को छोड़ दे । मान को नष्ट कर दे । सब बन्धनों को काट दे, जो नाम और रूप से नहीं चिपटता और जो किसी को अपना नहीं कहता उसको दुख नहीं सताता ।

यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं व धारये ।
तमहं सारथिं ब्रूमि रस्मिग्गाहो इतरो जनो ॥ २ ॥

२—जो चलते हुये रथ के समान क्रोध को रोकता है उसी को मैं सच्चा सारथी कहूँगा और तो केवल लगाम पकड़ने वाले हैं ।

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने ।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलीकवादिनं ॥ ३ ॥

३—अक्रोध से क्रोध को जीते, साधु से असाधु को, कदर्य (कजूस) को दान से, झूठे को सच से ।

सच्चं भणे न कुज्झेय्य दज्जाप्पस्मिं पि याचितो ।
एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके ॥ ४ ॥

४—सच बोले, क्रोध न करे, याचक को अपना माल दे दे। इन तीन बातों से मनुष्य देवताओं के निकट स्थान पाता है।

अहिंसका ये मुनयो निच्चं कायेन संवुता।
ते यन्ति अच्चुतं ठानं यत्थ गन्त्वा न सोचरे ॥ ५ ॥

५—जो मुनि लोग अहिंसक हैं और अपनी काया को वश में रखते हैं वह उस अच्युत स्थान (निर्वाण) को प्राप्त होते हैं जहाँ जाकर शोक नहीं होता।

सदा जागरमानानं अहोरत्तानुसिक्खिनं।
निब्बाणं अधिमुत्तानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥ ६ ॥

६—जो सदा जागते हैं, रात दिन शिक्षा ग्रहण करते हैं। अपने चित्त को निर्वाण में लगाते हैं उनकी वासनायें नष्ट हो जाती हैं।

पोराणमेतं अतुल नेतं अज्जतनामिव।
निन्दन्ति तुण्हीमासीनं निदन्ति बहुभाणिनं।
मितभाणिनं पि निदन्ति नत्थि लोके अनिन्दितो ॥ ७ ॥

७—हे अतुल, यह पुराना नियम है आज का नहीं कि जो नही बोलता उसको भी दोष देते हैं। जो बहुत बोलता है उसको भी दोष देते हैं। जो थोड़ा बोलता है उसको भी दोष देते हैं। कोई ऐसा नहीं जिसकी लोग निन्दा नहीं करते।

न चाहु न च भविस्सति न चेतरहि विज्जति।
एकन्तं निन्दितो पोसो एकान्तं वा पसंसितो ॥ ८ ॥

८—न हुआ, न होगा, न है ऐसा पुरुष जिसकी सब नितान्त निन्दा करें या नितान्त प्रशंसा करें।

यं चे विञ्ञू पसंसन्ति अनुविच्च सुवे सुवे।
अछिद्दवुत्तिं मेधाविं पञ्ञासीलसमाहितं॥ ९॥
नेक्खं जम्बोनदस्सेव को तं निन्दितुमरहति।
देवा पि नं पसंसन्ति ब्रह्मुना पि पसंसितो॥ १०॥

९,१०—जिसकी विद्वान् प्रशंसा करें जो स्वयं विद्वान और दोष रहित हो, मेधावी और प्रज्ञाशील हो जैसे स्वर्ण का पदक। उसकी कौन अप्रशंसा करेगा? देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं और ब्रह्मा भी उनका प्रशंसक होता है।

कायप्पकोपं रक्खेय्य कायेन संवुतो सिया।
कायदुच्चरितं हित्वा कायेन सुचरितं चरे॥ ११॥

११—काया के कोप से बच, काया पर दमन कर, काया के दुराचार को निकाल और काया से अच्छे काम कर।

वचीपकोपं रक्खेय्य वाचाय संवुतो सिया।
वचीदुच्चरितं हित्वा वाचाय सुचरितं चरे॥ १२॥

१२—वाणी के कोप से बच, वाणी को वश कर, वाणी के दुष्ट चरित को छोड़। वाणी से अच्छे काम कर।

मनोपकोपं रक्खेय्य मनसा संवुतो सिया।
मनोदुच्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं चरे॥ १३॥

१३—मनके कोप से बच, मन को वश में कर। मन के दुष्ट चरित्र को छोड़। मन से अच्छे काम कर।

कायेन संवुता धीरा अथो वाचाय संवुता।
मनसा संवुता धीरा ते वे सुपरिसंवुता ॥ १४ ॥

१४—वही धीर पुरुष ठीक ठीक अपने को दमन करते हैं जो काया, वाणी और मन को वश में रखते हैं।

इति कोधवग्गो सत्तरसमो।
यह सतरहवाँ क्रोधवर्ग हुआ।

मलवग्गो अट्ठारसमो

अठारहवां अध्याय मलवर्ग

पण्डुपलासो व दानिसि
यमपुरिसा पि च तं उपट्ठिता ।
उय्योगमुखे च तिट्ठसि
पाथेय्यं पि च ते न विज्जति ॥ १ ॥

१—तू पीले पत्ते के समान है । यम के दूत तेरी ताक में है । तू वियोग के द्वार पर खड़ा है (मरने के निकट है) और मार्ग के लिये पाथेय (भोजन) तेरे पास नहीं है ।

सो करोहि दीपमत्तनो
खिप्पं वायम पण्डितो भव ।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो
दिब्बं अरियभूमिमेहिसि ॥ २ ॥

२—द्वीप के समान (डूबने वाले के लिये सहारा) बन । व्यायाम (परिश्रम) कर और पण्डित हो । जब तेरे मल दूर हो जायंगे तो तुझे दिव्य आर्य्य भूमि के दर्शन होंगे ।

उपनीतवयो च दानिसि
संपयातो सि यमस्स सन्तिके ।

वासो पि च ते नत्थि अन्तरा
पाथेय्यं पि च ते न विज्जति ॥ ३ ॥

३—तेरा जीवन समाप्त हो चला अब तू यम के निकट है। मार्ग में ठहरने के लिये कोई स्थान नहीं है। और तेरे पास कुछ भी तोष्ण नहीं है।

सो करोहि दीपमत्तनो
खिप्पं वायम पण्डितो भव।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो
न पुन जातिजरं उपेहिसि ॥ ४ ॥

४—द्वीप के समान हो, उद्योग कर और पण्डित बन। जब तेरे मल छूट जायंगे तो जाति और जरा अर्थात जन्म और बुढ़ापे को प्राप्त न होगा।

अनुपुब्बेन मेधावी थोकथोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो ॥ ५ ॥

५—जिस प्रकार सुनार चांदी के मैल को दूर करता है उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष थोड़ा थोड़ा करके क्षण-क्षण पर अपने मैलों को दूर करे।

अयसा व मलं समुट्ठितं
तदुट्ठाय तमेव खादति।
एवं अतिधोनचारिनं
सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गतिं ॥ ६ ॥

६—यह लोहे का मोरचा (मल) ही है कि जो लोहे को खाजाता है। इसी प्रकार पापी के पाप कर्म्म ही हैं जो उसको दुर्गति तक पहुँचाते हैं।

असज्झायमला मन्ता अनुट्ठानमला घरा।
मलं वण्णस्स कोसज्जं पमादो रक्खतो मलं॥ ७॥

७—उपासना का मोरचा अनभ्यास है। घर का मोरचा उसकी बेमरम्मती है। आलस्य सौन्दर्य का मोरचा है और संरक्षक का मोरचा प्रमाद है।

मलित्थिया दुच्चरितं मच्छरं ददतो मलं।
मला वे पापका धम्मा अस्मिं लोके परम्हि च॥ ८॥

८—स्त्री का मल दुश्चरित्र है, दानी का मल मत्सर है। पापयुक्त कर्म इस लोक और परलोक दोनों लोकों में मल है।

ततो मला मलतरं अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहत्वान निम्मला होथ भिक्खवो॥ ९॥

९—इन सब मलों से भी अधिक मल अविद्या है। भिक्षुओं! मल को छोड़ो, निर्मल बनो।

सुजीवं अहिरीकेन काकसूरेन धंसिना।
पक्खन्दिना पगब्भेन संकिलिट्ठेन जीवितं॥ १०॥

१०—बेहया, काकसूर, दुष्ट, पाखण्डी, प्रगल्भ और निकृष्ट पुरुष के लिये जीवन आसान है।

हिरीमता च दुज्जीवं निच्चं सुचिगवेसिना ।
अलीनेनप्पगब्भेन सुद्धाजीवेन पस्सता ॥ ११ ॥

११—हयावाले, शुद्ध पवित्र, निस्स्वार्थी, शान्त, शुद्ध जीवन वाले और ज्ञानी के लिये जीवन कठिन है ।

यो पाणमतिपातेति मुसावादं च भासति ।
लोके अदिन्नं आदियति परदारं च गच्छति ॥ १२ ॥
सुरामेरयपानं च यो नरो अनुयुञ्जति ।
इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खणति अत्तनो ॥ १३ ॥

१२-१३—जो प्राणों की हत्या करता है, जो झूठ बोलता है, जो संसार में न दी हुई चीज़ को लेता है । जो पराई स्त्री से सहवास करता है, जो शराब पीता है वह पुरुष इस लोक में अपनी जड़ आप खोदता है ।

एवं भो पुरिस जानाहि पापधम्मा असञ्ञता ।
मा तं लोभो अधम्मो च चिरं दुक्खाय रन्धयुं ॥ १४ ॥

१४—हे पुरुष तू जान कि अनियमितता पाप है । लोभ और अधर्म तुझ पर लम्बे कष्ट न लावें इस प्रकार जीवन व्यतीत कर ।

ददाति वे यथासद्धं यथापसादनं जनो ।
तत्थ यो मङ्कु भवति परेसं पानभोजने ॥
न सो दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति ॥ १५ ॥

१५—मनुष्य श्रद्धा या इच्छानुसार दान करते हैं । इस लिये

जो पुरुष क्रोध करता है कि लोग दूसरों को क्यों भोजन और जल देते हैं वह रात दिन समाधि को प्राप्त नहीं होता ।

यस्स चेतं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं ।
स वे दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति ॥ १६ ॥

१६—उसी पुरुष को रात दिन समाधि प्राप्त होती है जिसके चित्त में से डाह सर्वथा जड़ नष्ट हो चुका है ।

नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो गहो ।
नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्हासमा नदी ॥ १७ ॥

१७—राग के समान कोई आग नहीं, द्वेष के समान कोई ग्राह नहीं, मोह के समान कोई जाल नहीं, तृष्णा के समान कोई नदी नहीं ।

सुदस्सं वज्जमञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं ।
परेसं हि सो वज्जानि ओपुणाति यथा भुसं ।
अत्तनो पन छादेति कलिं व कितवा सठो ॥ १८ ॥

१८—दूसरे का दोष जल्दी दीख जाता है । अपना देर में दीखता है । लोग दूसरों के दोषों को भुस के समान फटकते हैं परन्तु अपने दोषों को इस प्रकार छिपाते हैं जैसे चतुर ज्वारी हराने वाले पासे को छिपाता है ।

परवज्जानुपस्सिस्स निच्चं उज्झानसञ्ञिनो ।
आसवा तस्स वड्ढन्ति आरा सो आसवक्खया ॥ १९ ॥

१९—जो दूसरों के दोषों को बहुत देखता है। और चिढ़ता बहुत है उसकी वासनायें बढ़ जाती हैं और वह उनका नाश नहीं कर सकता।

आकासे पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
पपञ्चाभिरता पजा निप्पपञ्चा तथागता ॥ २० ॥

२०—आकाश में कोई मार्ग नहीं है। बाहरी आडम्बरों से श्रमण नहीं बनता। संसार के लोग प्रपञ्च में रत रहते हैं। तथा गत लोग प्रपञ्च रहित होते हैं।

आकासे पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
सङ्खारा सस्सता नत्थि नत्थि बुद्धानमिञ्जितं ॥ २१ ॥

२१—आकाश में कोई मार्ग नहीं है। बाहरी आडम्बरों से कोई श्रमण नहीं होता। संसार सदा रहने वाला नहीं है। बुद्ध कभी चलायमान नहीं होता।

इति मलवग्गो अट्ठारसमो।

यह अठारहवाँ मलवर्ग हुआ।

धम्मट्ठवग्गो एकूनवीसतिमो

उन्नीसवां अध्याय धर्मिष्ठवर्ग

न तेन होति धम्मट्ठो येनत्थं नयं ।
यो च अत्थं अनत्थं च उभो निच्छेय्य पण्डितो ॥ १ ॥

असाहसेन धम्मेन समेन नयती परे ।
धम्मस्स गुत्तो मेधावी धम्मट्ठो ति पवुच्चति ॥ २ ॥

१,२—जो धींगाधांगी करता है वह धर्म्मिष्ठ नहीं है । जो अर्थ और अनर्थ का निश्चय करता है, जो पण्डित है, जो धींगाधांगी नहीं करता, जो धर्म से सुरक्षित और मेधावी है वही धर्म्मिष्ठ है ।

न तेन पण्डितो होति यावता बहु भासति ।
खेमी अवेरी अभयो पण्डितो ति पवुच्चति ॥ ३ ॥

३—वह पण्डित नहीं है जो बहुत बोलता है । पण्डित वह है जो क्षमाशील, वैर रहित. और अभय हो ।

न तावता धम्मधरो यावता बहु भासति ।
यो च अप्पं पि सुत्वान धम्मं कायेन पस्सति ।
स वे धम्मधरो होति यो धम्मं नप्पमज्जति ॥ ४ ॥

४—वह धर्मधर नहीं है जो बहुत बोले । धर्मधर वही है

और वही धर्म का अपमान नहीं करता जो चाहे थोड़ा पढ़ा है परन्तु उस पर चलता है।

न तेन थेरो होति येनस्स फलितं सिरो।
परिपक्को वयो तस्स मोघजिण्णो ति वुच्चति ॥ ५ ॥

५—यदि किसी के बाल पक जायें तो इससे वह बड़ा नहीं हो जाता। उसकी आयु भले ही पक गई हो परन्तु वह व्यर्थ ही बड़ा कहलाता है।

यम्हि सच्चं च धम्मो च अहिंसा संयमो दमो।
स वे वन्तमलो धीरो थेरो ति पवुच्चति ॥ ६ ॥

६—वही बड़ा है जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम, और दम है, जो मल से रहित और धीर है।

न वाकरणमत्तेन वण्णपोक्खरताय वा।
साधुरूपो नरो होति इस्सुकी मच्छरी सठो ॥ ७ ॥

७—जो पुरुष विषयी, मत्सरी और शठ है वह बहुत बातों या रंगरूप से साधु नहीं हो सकता।

यस्स चेतं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं।
स वन्तदोसो मेधावी साधुरूपो ति वुच्चति ॥ ८ ॥

८—वही साधु है जिसके यह दोष जड़मूल से नष्ट हो गये हैं। जो द्वेष रहित और मेधावी है।

न मुण्डकेन समणो अब्बतो अलिकं भणं ।
इच्छालोभसमापन्नो समणो किं भविस्सति ॥ ९ ॥

९—अनियमित और झूठा मूंड मुंडाने से ही श्रमण नहीं हो जाता। क्या ऐसा मनुष्य श्रमण हो सकता है जो इच्छा और लोभ से युक्त हो।

यो च समेति पापानि अणुं थूलानि सब्बसो ।
समितत्ता हि पापानं समणो ति पवुच्चति ॥ १० ॥

१०—वही श्रमण है जिसने छोटे बड़े सब पाप त्याग दिये हैं क्योंकि वह पापों से अलग है।

न तेन भिक्खू होति यावता भिक्खते परे ।
विस्सं धम्मं समादाय भिक्खु होति न तावता ॥ ११ ॥

११—जो केवल भिक्षा मांगता है वह भिक्षु नहीं है। भिक्षु वही होता है जो धर्म के अनुकूल आचरण करता है।

योध पुञ्ञं च पापं च बाहेत्वा ब्रह्मचरियवा ।
सङ्खाय लोके चरति स वे भिक्खू ति वुच्चति ॥ १२ ॥

१२—जो पाप और पुण्य से ऊँचा है, ब्रह्मचारी है और लोक में धर्म से चलता है वही भिक्षु है।

न मोनेन मुनी होति मूलहरूपो अविद्दसु ।
यो च तुलं व पग्गय्ह वरमादाय पण्डितो ॥ १३ ॥

पापानि परिवज्जेति स मुनी तेन सो मुनी ।
यो मुनाति उभो लोके मुनी तेन पवुच्चति ॥ १४ ॥

१३,१४—यदि कोई पुरुष मूढ़ और अज्ञानी है तो केवल मौन रहने से मुनि नहीं हो जाता। मुनि वही पण्डित है जो तुला (तराजू) के समान ठीक ठीक जाँच करता है और अच्छे को ग्रहण करता तथा बुरे को त्यागता है। जो दोनों लोकों में मुनि है वही सच्चा मुनि है।

न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति ।
अहिंसा सब्बपाणानं अरियो ति पवुच्चति ॥ १५ ॥

१५—जो प्राणियों की हिंसा करता है वह आर्य्य नहीं है। जो सब प्राणियों के साथ अहिंसा का बर्ताव करता है वही आर्य्य है।

न सीलब्बतमत्तेन बाहुसच्चेन वा पुन ।
अथवा समाधिलाभेन विविच्चसयनेन वा ॥ १६ ॥
फुसामि नेक्खम्मसुखं अपुथुज्जनसेवितं ।
भिक्खु विस्सासमापादि अप्पत्तो आसवक्खयं ॥ १७ ॥

१६,१७—न शील से, न स्तब्धता से, न बड़ी विद्या से, न समाधि से, न एकान्त वास से मैंने वह सुख पाया जो साधारण मनुष्यों को ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं! इतने पर सन्तोष न करो जब तक तुम्हारी सब वासनायें दूर न हो जायें।

इति धम्मट्ठवग्गो एकूणवीसतिमो ।
यह उन्नीसवाँ धर्म्मिष्ठ वर्ग हुआ

मग्ग वग्गो वीसतिमो

बीसवां अध्याय मार्गवर्ग

मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा ।
विरागो सेट्ठो धम्मानं द्विपदानं च चक्खुमा ॥ १ ॥

१—मार्गों में आठ मार्ग श्रेष्ठ हैं । सत्यों में चार सत्य । धर्मों में वैराग्य श्रेष्ठ है । मनुष्यों में श्रेष्ठ है आँखों वाला (तत्वदर्शी) ।

एसो व मग्गो नत्थञ्ञो दस्सनस्स विसुद्धिया ।
एतम्हि तुम्हे पटिपज्जथ मारस्सेतं पमोहनं ॥ २ ॥

२—यही मार्ग है । बुद्धि की शुद्धि के लिये कोई अन्य मार्ग नहीं । इसी मार्ग पर चलो और सब मार (विषय) की धोखे की टट्टी है ।

एतं हि तुम्हे पटिपन्ना दुक्खस्सन्तं करिस्सथ ।
अक्खातो वे मया मग्गो अञ्ञाय सल्लसन्थनं ॥ ३ ॥

३—इसी मार्ग पर चलने से तुम्हारे दुखों का अन्त होगा, मैंने इस मार्ग का उस समय प्रचार किया जब मैंने कांटा निकालना सीख लिया ।

तुम्हेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता ।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति झायिनो मारबन्धना ॥ ४ ॥

४—तुम्हीं को उद्योग करना चाहिये। तथागत ही उपदेश देनेवाले हैं। जो उद्योगशील और ध्यानी हैं वह मार के बन्धनों से छूट जाते हैं।

सब्बे सङ्खारा अनिच्चा ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दती दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ॥ ५ ॥

५—सब उत्पन्न हुई चीजें अनित्य हैं। जो इस बात को जानता और देखता है वह दुख से उदासीन हो जाता है। यही शुद्धि का मार्ग है।

सब्बे सङ्खारा दुक्खा ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दती दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ॥ ६ ॥

६—सब उत्पन्न हुई चीजें दुखदायी हैं। जो यह जानता और देखता है वह दुख से उदासीन हो जाता है। यही शुद्धि का मार्ग है।

सब्बे धम्मा अनत्ता ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दती दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ॥ ७ ॥

७—सब धर्म अनित्य है। जो यह जानता और देखता है वह दुख से उदासीन हो जाता है। यही मार्ग शुद्धि का है।

उट्ठानकालम्हि अनुट्ठहानो
युवा बली आलसियं उपेतो।
संसन्नसङ्कप्पमनो कुसीतो
पञ्ञाय मग्गं अलसो न विन्दति ॥ ८ ॥

८—उस आलसी मनुष्य को प्रज्ञा (ज्ञान) का मार्ग कभी मिल सकता जो उठने के समय नहीं उठता, जो जवान और बलवान् होते हुये भी आलसी है, या जिसका संकल्प और चित्त कमजोर है।

वाचानुरक्खी मनसा सुसंवुतो
कायेन च अकुसलं न कयिरा।
एते तयो कम्मपथे विसोधये
आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं ॥ ९ ॥

९—श्रेष्ठ पुरुषों के निर्दिष्ट मार्ग पर वही चल सकता है जो वाणी और मन की रक्षा करता है। और काया से कोई बुरा काम नहीं करता। शुद्धि के लिये यही तीन मार्ग हैं।

योगा वे जायती भूरी अयोगा भूरिसङ्ख्यो।
एतं द्वेधापथं ञत्वा भवाय विभवाय च ॥
तथत्तानं निवेसेय्य यथा भूरी पवड्ढति ॥ १० ॥

१०—ध्यान से ज्ञान होता है और ध्यान के अभाव से अज्ञान। लाभ और हानि के यह दोनों मार्ग जानकर उस मार्ग का अवलम्बन करो जिससे ज्ञान बढ़े।

वनं छिन्दथ मा रुक्खं वनतो जायते भयं।
छेत्वा वनं च वनथं च निब्बना होथ भिक्खवो ॥ ११ ॥

११—वासना के वन को काट डालो। एक भी वृक्ष न रहे।

इस वन में भय होता है। हे भिक्षुओं! जब वन और उसके नीचे उपजने वाली वनस्पति को काट डालोगे तो तभी निर्वन होगे अर्थात् निर्वाण प्राप्त करोगे।

यावं हि वनथो न छिज्जति
अणुमत्तो पि नरस्स नारिसु।
पटिबद्धमनो व ताव सो
वच्छो खीरपको व मातरि ॥ १२ ॥

१२—जब तक कि पुरुष का स्त्री के साथ पूरा सम्बन्ध नहीं टूट जाता उस समय तक वह बन्धन में है। और उसकी ओर ऐसे दौड़ता है जैसे दूध पीने वाला बछड़ा मा की ओर।

उच्छिन्द सिनेहमत्तनो कुमुदं सारदिकं व पाणिना।
सन्तिमग्गमेव ब्रूहय निब्बाणं सुगतेन देसितं ॥ १३ ॥

१३—आत्मा के राग को इस प्रकार काट दो जैसे हाथ से शरद ऋतु के कुमुद को तोड़ते हैं। शान्ति के मार्ग को धारण करो। सुगत ने निर्वाण का उपदेश किया है।

इध वस्सं वसिस्सामि इध हेमन्तगिम्हिसु।
इति बालो विचिन्तेति अन्तरायं न बुज्झति ॥ १४ ॥

१४—"यहां वर्षा ऋतु में रहूंगा, यहां जाड़े में, यहां गर्मी में", मूर्ख लोग विना समझे हुये कि भविष्य में क्या होगा ऐसा सोचा करते हैं।

तं पुत्तपसुसम्मत्तं ब्यासत्तमनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघो व मच्चु आदाय गच्छति ॥ १५ ॥

१५—जिस प्रकार पानी की बाढ़ सोते हुये ग्राम को बहा ले जाती है उसी प्रकार मौत उसको ले जाती है जो पुत्र और पशु के विचार में फँसा हुआ है।

न सन्ति पुत्ता ताणाय न पिता न पि बन्धवा।
अन्तकेनाधिपन्नस्स नत्थि ञातीसु ताणता ॥ १६ ॥

१६—पुत्र, पिता और बन्धु कुछ रक्षा नहीं कर सकते। जब मौत आती है तो रिश्तेदार कुछ सहायता नहीं करते।

एतमत्थवसं ञत्वा पण्डितो सीलसंवुतो।
निब्बाणगमनं मग्गं खिप्पमेव विसोधये ॥ १७ ॥

१७—शीलवन्त पण्डित इस बात को जानकर उस मार्ग को साफ कर देता है जो निर्वाण को ले जाता है।

इति मग्गवग्गो वीसतिमो।

यह बीसवां मार्गवर्ग हुआ

पकिण्णकवग्गो एकवीसतिमो

इक्कीसवाँ अध्याय विविधवर्ग

मत्तासुखपरिच्चागा पस्से चे विपुलं सुख ।
चजे मत्तासुखं धीरो संपस्सं विपुलं सुखं ॥ १ ॥

१—यदि थोड़े सुख के परित्याग करने से विपुल सुख मिले तो धीर पुरुष विपुल सुख को देखकर थोड़े सुख को छोड़ दे ।

परदुक्खूपधानेन अत्तनो सुखमिच्छति ।
वेरसंसग्गसंसट्ठो वेरा सो न परिमुच्चति ॥ २ ॥

२—जो दूसरे को दुख देकर अपना सुख चाहता है वह बैर में फंस जाता है और उससे छूट नहीं सकता ।

यं हि किच्च अपविद्धं अकिच्चं पन कयिरति ।
उन्नलानं पमत्तानं तेसं वड्ढन्ति आसवा ॥ ३ ॥

३—कृत्य को छोड़ दिया और अकृत्य को किया । ऐसे उन्मत्त और प्रमत्त लोगों की वासनायें बढ़ती हैं ।

येसं च सुसमारद्धा निच्चं कायगता सति ।
अकिच्चं ते न सेवन्ति किच्चे सातच्चकारिनो ।
सतानं सम्पजानानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥ ४ ॥

४—जो शरीर की गति को नित्य विचारते हैं, अकृत्य को करने

नहीं, कृत्य को करते हैं ऐसे ज्ञानी सत्पुरुषों की वासनायें छूट जाती हैं।

मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च खत्तिये।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो ॥ ५ ॥

५—माता पिता दो क्षत्रिय राजों तथा प्रजा सहित सम्पूर्ण राज को मार कर भी ब्राह्मण निर्दोष रहता है।

मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च सोत्थिये।
वेय्यग्घपञ्चमं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो ॥ ६ ॥

६—माता पिता दो पवित्र राजों और एक पाँचवें योग्य पुरुष को मारकर भी ब्राह्मण निर्दोष रहता है।

[नोट—शायद यह अजातशत्रु राजा के पुराने कर्मों की ओर संकेत है। शायद तात्पर्य यह है कि जिसको ज्ञान हो गया उसके पुराने पाप नष्ट हो जाते हैं।]

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं बुद्धगता सति ॥ ७ ॥

७—गोतम के शिष्य सदा जागते रहते हैं। और वह रात दिन बुद्ध का ही विचार करते रहते हैं।

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं धम्मगता सति ॥ ८ ॥

८—गोतम के शिष्य सदा जागते रहते हैं। वह रात दिन नित्य धर्म की गति का ही विचार करते रहते हैं।

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं संघगता सति ॥ ९ ॥

९—गोतम के शिष्य सदा जागते रहते हैं। वह दिन रात नित्य संघ का ही विचार करते रहते हैं।

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं कायगता सति ॥ १० ॥

१०—गोतम के शिष्य सदा जागते रहते हैं। वह रात दिन नित्य शरीर का ही विचार करते रहते हैं।

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च अहिंसाय रतो मनो ॥ ११ ॥

११—गोतम के शिष्य सदा जागते रहते हैं। रात दिन उनका मन अहिंसा में रत रहता है।

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च भावनाय रतो मनो ॥ १२ ॥

१२—गोतम के शिष्य सदा जागते रहते हैं। उनका मन रात दिन भावना में ही रत रहता है।

दुप्पब्बज्जं दुरभिरमं दुरावासा घरा दुखा।
दुक्खो समानसंवासो दुक्खानुपतितद्धगू।
तस्मा न चद्धगू सिया न च दुक्खानुपतितो सिया ॥ १३ ॥

१३—घर को छोड़कर फकीर होना कठिन है, घर में गृहस्थी बन

कर रहना भी कठिन है। बराबर वालों के साथ रहना भी कठिन है और फिरते रहने से भी दुख होता है। इसलिये फिरने वाला (सन्यासी) न बन फिर दुख न होगा।

सद्धो सीलेन संपन्नो यसोभोगसमप्पितो।
यं यं पदेसं भजति तत्थ तत्थेव पूजितो ॥ १४ ॥

१४—श्रद्धालु, शील सम्पन्न, यशस्वी और धनी, जिस देश में जाता है वहाँ वहाँ पूजा जाता है।

दूरे सन्तो पकासेन्ति हिमवन्तो व पब्बतो।
असन्तेत्थ न दिस्सन्ति रत्तिंखित्ता यथा सरा ॥ १५ ॥

१५—बर्फीले पर्वत के समान सन्त लोग दूर से ही चमकते हैं। असन्त इस प्रकार अदृष्ट रहते हैं जैसे रात में छोड़ा हुआ तीर।

एकासनं एकसेय्यं एको चरमतन्दितो।
एको दमयमत्तानं वनन्ते रमितो सिया ॥ १६ ॥

१६—अकेला खाना खाय, अकेला सोवे, अकेला चले। अपने पर पूरा दमन रक्खे और वन में आनन्द से विचरे।

इति पकिण्णक वग्गो एकवीसतिमो।

यह इक्कीसवां विविधवर्ग हुआ।

निरयवग्गो बावीसतिमो

बाइसवां अध्याय नरकवर्ग

अभूतवादी निरयं उपेति
　　यो वा पि कत्वा न करोमीति चाह ।
उभो पि ते पेच्च समा भवन्ति
　　निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥ १ ॥

१—जो न हुई बात को कहता है (अर्थात् झूठा) वह नरक को जाता है। वह पुरुष भी जो किसी काम को करके कहता है "मैंने नहीं किया"। दोनों प्रकार के बुरा कर्म करने वाले परलोक में एक से रहते हैं।

कासावकण्ठा बहवो पापधम्मा असंयता ।
पापा पापेहि कम्मेहि निरयं ते उपपज्जरे ॥ २ ॥

२—बहुत से कासाय वस्त्र पहनने वाले पापी और असंयत हैं। यह पापी पाप कर्म्म के द्वारा नरक को जाते हैं।

सेय्यो अयोगुलो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखूपमो ।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असंयतो ॥ ३ ॥

३—दुश्शील और असंयमी पुरुष राष्ट्र का धन व्यर्थ खावे

इससे तो आग में तपाया हुआ लोहे का लाल गोला खा जाय वह अच्छा।

> चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो
> आपज्जति परदारूपसेवी।
> अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्य
> निन्दं ततियं निरयं चतुत्थं ॥ ४ ॥

४—पराई स्त्री का संग करने वाला प्रमत्त पुरुष चार चीजें प्राप्त करता है। अपुण्य लाभ, कष्ट युक्त शय्या,* तीसरी निन्दा और चौथा नरक।

> अपुञ्ञलाभो च गती च पापिका
> भीतस्स भीताय रती च थोकिका।
> राजा च दण्डं गरुकं पणेति
> तस्मा नरो परदारं न सेवे ॥ ५ ॥

५—अपुण्य लाभ, पाप की गति, भय, थोड़ी देर का सुख, भारी राज दण्ड। इन बातों की प्राप्ति होती है। इस लिये मनुष्य को पर स्त्री संग नहीं करना चाहिये।

> कुसो यथा दुग्गहितो हत्थमेवानुकन्तति।
> सामञ्ञं दुप्परामट्ठं निरयाय उपकड्ढति ॥ ६ ॥

६—जैसे असावधानी से पकड़ा हुआ कुश हाथ को काट देता है उसी प्रकार असावधानी से साधु होने से नरक की प्राप्ति, होती है।

---

* शायद यहाँ पुराने समय के दण्ड की ओर संकेत है।

यं किञ्चि सिथिलं कम्मं संकिलिट्ठं च यं वतं ।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं न तं होति महप्फलं ॥ ७ ॥

७—शिथिलता से कर्म करना, व्रतों का न पालना, ब्रह्मचर्य में शङ्का करना इन मे कुछ फल नहीं होता ।

कयिरं चे कयिराथेनं दळ्हमेनं परक्कमे ।
सिथिलो हि परिब्बाजो भिय्यो आकिरते रजं ॥ ८ ॥

८—जो कुछ काम करना है परिश्रम के साथ करो । शिथिल परिव्राजक रोग उत्पन्न कर देता है ।

अकतं दुक्कतं सेय्यो पच्छा तपति दुक्कतं ।
कतं च सुकतं सेय्यो यं कत्वा नानुतप्पति ॥ ९ ॥

९—दुष्कृत को न करना ही श्रेयस्कर है क्योंकि दुष्कृत के पीछे पछताना पड़ता है । सुकृत को करना चाहिये जिसमें पीछे पछताना न पड़े ।

नगरं यथा पच्चन्तं गुत्तं सन्तरबाहिरं ।
एवं गोपेथ अत्तानं खणो वे मा उपच्चगा ॥
खणातीता हि सोचन्ति निरयम्हि समप्पिता ॥ १० ॥

१०—अपने को इस प्रकार सुरक्षित रख, जैसे किले को बाहर भीतर से सुरक्षित रखते हैं । क्षण भी व्यर्थ जाने न दे । क्योंकि जो समय पर काम नहीं करते वह नरक में जाकर दुख उठाते हैं ।

अलज्जिताये लज्जन्ति लज्जिताये न लज्जरे ।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ॥ ११ ॥

११—जो लज्जा के न योग्य बात पर लज्जा करते हैं और लज्जा के योग्य बात पर लज्जा नहीं करते वह झूठे मार्ग पर दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

अभये भयदस्सिनो भये चाभयदस्सिनो ।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ॥ १२ ॥

१२—न भय के योग्य वस्तु में भय दिखाने वाले और भय वालों में भय न दिखाने वाले यह झूठ विचारों को धारण करके दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

अवज्जे वज्जमतिनो वज्जे चावज्जदस्सिनो ।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ॥ १३ ॥

१३—छोड़ने योग्य बात को न छोड़ने और न छोड़ने योग्य को छोड़ने वाले झूठे लोग सदा दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

वज्जं च वज्जतो ञत्वा अवज्जं च अवज्जतो ।
सम्मादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं ॥ १४ ॥

१४—छोड़ने योग्य को छोड़ और न छोड़ने योग्य को न छोड़। जो इस प्रकार रखते हैं वह अवश्य सुगति को प्राप्त होते हैं।

इति निरयवग्गो बावीसतिमो ।

यह बाईसवां अध्याय नरकवर्ग हुआ।

नागवग्गो तेवीसतिमो

तेईसवां अध्याय नागवर्ग

अहं नागो व सङ्गामे चापातो पतितं सरं ।

अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो ॥ १ ॥

१—जिस प्रकार लड़ाई में छोड़े हुये तीर को हाथी सहता है उसी प्रकार मैं दूसरों के अपशब्दों को सहूँगा क्योंकि प्राय: आदमी दुश्शील होते हैं ।

दन्तं नयन्ति समितिं दन्तं राजाभिरूहति ।

दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु योऽतिवाक्यं तितिक्खति ॥ २ ॥

२—दमन किये हुये हाथी को लड़ाई में ले जाते हैं । दमन किये हुये हाथी पर राजा चढ़ते हैं । जो अपशब्दों को सह लेता है ऐसा दमन किया हुआ सबसे श्रेष्ठ मनुष्य है ।

वरमस्सतरा दन्ता आजानीया च सिन्धवा ।

कुञ्जरा च महानागा अत्तदन्तो ततो वरं ॥ ३ ॥

३—दमन किये हुये खच्चर अच्छे । ऐसे ही सिन्ध देश के घोड़े तथा बड़े हाथी । इसी प्रकार दमन किया हुआ मनुष्य सब से श्रेष्ठ है ।

न हि एतेहि यानेहि गच्छेय्य अगतं दिसं ।

यथात्तना सुदन्तेन दन्तो दन्तेन गच्छति ॥ ४ ॥

४—इन सवारियों पर मनुष्य अगत देश अर्थात् निर्वाण प्राप्त नहीं करता । दमन किया हुआ मनुष्य दमन किये हुये पशुओं पर चढ़कर वहां पहुँचता है ।

धनपालको नाम कुञ्जरो

कटुकप्पभेदनो दुन्निवारयो ।

बद्धो कवलं न भुञ्जति

सुमरति नागवनस्स कुञ्जरो ॥ ५ ॥

५—धनपालक नाम बड़े हाथी को पकड़ने के समय वश में करना कठिन है । वह बंधा हुआ कुछ नहीं खाता । वह तो कजली वन की ही याद करता है ।

मिद्धी यदा होति महग्घसो च

निद्दायिता सम्परिवत्तसायी ।

महावराहो व निवापपुट्ठो

पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो ॥ ६ ॥

६—यदि कोई आलसी और खउआ हो जाता है और नींद में ग्रसित रहता है तो वह बंध कर खानेवाले सूअर के समान फिर जन्म को प्राप्त होता है ।

इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं
येनिच्छकं यत्थकामं यथासुखं ।
तदज्जहं निग्गहेस्सामि योनिसो
हत्थिप्पभिन्नं विय अंकुसग्गहो ॥ ७ ॥

७—पहले मेरा मन वहाँ जाता था जहां इच्छा कामना और सुख ले जाते थे। अब मैं उसको वश में कर लूंगा। जैसे हाथीवान् हाथी को पकड़ कर वश में करता है।

अप्पमादरता होथ सचित्तमनुरक्खथ ।
दुग्गा उद्धरथत्तानं पङ्के सन्नो व कुञ्जरो ॥ ८ ॥

८—प्रमादरहित हो, अपने विचारों को सुरक्षित करो। कीचड़ में फंसे हुये हाथी के समान बुराइयों से ऊपर उठो।

सचे लभेथ निपकं सहायं
सद्धिंचरं साधुविहारि धीरं ।
अभिभुय्य सब्बानि परिस्सयानि
चरेय्य तेनत्तमनो सतीमा ॥ ९ ॥

९—अगर तुमको ऐसा निष्पक्ष साथी मिल जाय जो नेक, और बुद्धिमान् हो और किसी प्रकार की कठिनाई से न हारे तो तुम दत्तचित्त होकर उसके साथ चल दो।

नो चे लभेथ निपकं सहायं
सद्धिंचरं साधुविहारि धीरं ।

राजा व रट्ठं विजितं पहाय
एको चरे मातङ्गरञ्ञे व नागो ॥ १० ॥

१०—अगर तुमको ऐसा निष्पक्ष साथी न मिले जो अच्छा, साधु और धीर हो तो अकेले चल दो जैसे राजा जीते हुये राज्य को छोड़ कर चल देता है या हाथी जङ्गल को चल देता है।

एकस्स चरितं सेय्यो
नत्थि बाले सहायता ।
एको चरे न च पापानि कयिरा
अप्पोस्सुको मातङ्गरञ्ञे व नागो ॥ ११ ॥

११—अकेला चलना अच्छा। मूर्ख की सहायता अच्छी नहीं। अकेला चल, पाप न कर अल्प इच्छायें रख, जैसे जंगल में हाथी।

अत्थम्हि जातम्हि सुखा सहाया
तुट्ठी सुखा या इतरीतरेन ।
पुञ्ञं सुखं जीवितसङ्खयम्हि
सब्बस्स दुक्खस्स सुखं पहाणं ॥ १२ ॥

१२—सहायता करने वाले साथी भले। सुख भला। चाहे किसी कारण से हो। मृत्यु के समय पुण्य ही साथी है। सब दुखों का छूटना ही सुख है।

सुखा मत्तेय्यता लोके अथो पेत्तेय्यता सुखा ।
सुखा सामञ्ञता लोके अथो ब्रह्मञ्ञता सुखा ॥ १३ ॥

१३—माता की सेवा अच्छी, पिता की सेवा अच्छी, श्रमण (साधु) की सेवा अच्छी और ब्राह्मणों की सेवा अच्छी ।

सुखं याव जरा सीलं सुखा सद्धा पतिट्ठिता ।
सुखो पञ्ञाय पटिलाभो पापानं अकरणं सुखं ॥ १४ ॥

१४—बुढ़ापे तक चलनेवाला शील अच्छा । प्रतिष्ठित श्रद्धा अच्छी । प्रज्ञा लाभ अच्छा । पाप का न करना अच्छा ।

इति नागवग्गो तेवीसतिमो ।

यह तेईसवां नागवर्ग हुआ ।

तण्हावग्गो चतुवीसतिमो

चौबीसवां अध्याय तृष्णावर्ग

मनुजस्स पमत्तचारिनो तण्हा वड्ढति मालुवा विय ।
सो पलवति हुराहुरं फलमिच्छं व वनस्मि वानरो ॥ १ ॥

१—प्रमत्त मनुष्य की तृष्णा बेल (लता) के समान बढ़ती है । वह एक वस्तु से दूसरी वस्तु तक इस प्रकार भागता है जैसे वन में बन्दर एक फल से दूसरे फल तक ।

यं एसा सहती जम्मी तण्हा लोके विसत्तिका ।
सोका तस्स पवड्ढन्ति अभिवट्ठं व बीरणं ॥ २ ॥

२—लोक में जिस पुरुष को यह विषयुक्त तृष्णा लग जाती है । उसके शोक बढ़ जाते हैं जैसे बीरन घास बढ़ती है ।

यो चेतं सहती जम्मिं तण्हं लोके दुरच्चयं ।
सोका तम्हा पपतन्ति उदबिन्दु व पोक्खरा ॥ ३ ॥

३—लोक में जो पुरुष इस दुर्जय तृष्णा को वश में कर लेता है उसके शोक इस प्रकार झड़ जाते हैं जैसे कमल के पत्ते से पानी की बूंदे ।

तं वो वदामि भद्दं वो यावन्तेत्थ समागता ।
तण्हाय मूलं खणथ उसीरत्थो व बीरणं ।
मा वो नलं व सोतो व मारो भञ्जि पुनप्पुनं ॥ ४ ॥

४—जो आप लोग यहां इकट्ठे हुये हैं उनसे मैं यह अच्छी बात कहता हूँ। जिस प्रकार वीरन घास को जड़ से उखाड़ते हैं इसी प्रकार तृष्णा को जड़ से उखाड़ दो। जिस प्रकार नदी की धारा नरकुलों को बार बार तोड़ देती है इस प्रकार मार (विषय) तुमको न तोड़े।

यथापि मूले अनुपद्दवे दळ्हे
छिन्नोऽपि रुक्खो पुनरेव रूहति।
एवं पि तण्हानुसये अनूहते
निब्बत्तती दुक्खमिदं पुनप्पुनं ॥ ५ ॥

५—जिस प्रकार जड़ नष्ट न होने से वृक्ष कटा हुआ भी फिर उग आता है। इसी प्रकार जब तक तृष्णा की जड़ न कटे तब तक दुख फिर फिर आता रहेगा।

यस्स छत्तिंसती सोता मनापस्सवना भुसा।
वाहा वहन्ति दुद्दिट्ठिं सङ्कप्पा रागनिस्सिता ॥ ६ ॥

६—जिसकी सुख चाहनेवाली वासनायें छत्तीस सोतों (धाराओं) में फूट कर बहती हैं उस दुर्दिष्ट को वह बहा ले जाती हैं। अर्थात् उसके रागयुक्त सङ्कल्प।

सवन्ति सब्बधी सोता लता उब्भिज्ज तिट्ठति।
तं च दिस्वा लतं जातं मूलं पञ्ञाय छिन्दथ ॥ ७ ॥

७—सोतों के रूप में सर्वत्र बहते हैं। लतायें उगती और

जड़ पकड़ती है। जहाँ कहीं तुम लताओं को जड़ पकड़ते देखो वहीं ज्ञान से उनकी जड़ उखाड़ दो।

सरितानि सिनेहितानि च
 सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो।
ते सातसिता सुखेसिनो
 ते वे जातिजरूपगा नरा ॥ ८ ॥

८—प्राणियों की इच्छायें बहुत और बढ़ी हुई हैं। वे कामनाओं और सुख में फंसे हुये जाति और जरा अर्थात जन्म और बुढ़ापे में बार बार फँसते हैं।

तसिणाय पुरक्खता पजा
 परिसप्पन्ति ससो व बाधितो।
संयोजनसङ्गसत्ता दुक्ख—
 मुपेन्ति पुनप्पुनं चिराय ॥ ९ ॥

९—जाल में फंसे हुये खरगोश के समान तृष्णा में फंसे हुये लोग इधर उधर भागते हैं। बेड़ियों में फँसे हुये वह लोग सदा बार बार दुख में पड़े रहते हैं।

तसिणाय पुरक्खता पजा
 परिस्सप्पन्ति ससो व बाधितो।
तस्मा तसिणं विनोदये
 भिक्खु आकङ्खि विरागमत्तनो ॥ १० ॥

१०—जाल में फंसे हुये खरगोश के समान तृष्णा में फंसे हुये लोग इधर उधर भागते हैं। इसलिये भिक्षु को चाहिये कि वैराग्य प्राप्त करे और तृष्णा को दूर कर दे।

यो निब्बनथो वनाधिमुत्तो वनमुत्तो वनमेव धावति ।
तं पुग्गलमेव पस्सथ मुत्तो बन्धनमेव धावति ॥ ११ ॥

११—जो निर्वाण प्राप्ति और इच्छाओं के वन से मुक्ति के पश्चात् फिर उन्हीं इच्छाओं के वन की ओर धावता है उस पुरुष को देखो। वह मुक्त होकर फिर बन्धन में आता है।

न तं दल्हं बन्धनमाहु धीरा
यदायसं दारुजं बब्बजं च ।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु
पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥ १२ ॥

१२—बुद्धिमान् लोग लोहे, लकड़ी या सन के बन्धन को दृढ़ बन्धन नहीं कहते। इनकी अपेक्षा कहीं कठिन बन्धन वह चिन्ता है जो मणि, कुण्डल, पुत्र और स्त्री के लिये की जाती है।

एतं दल्हं बन्धनमाहु धीरा
ओहारिनं शिथिलं दुप्पमुञ्चं ।
एतं पि छेत्वान परिब्बजन्ति
अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय ॥ १३ ॥

१३—धीर लोग उसी बन्धन को दृढ़ कहते हैं जो खिंच जाय,

ढीला पड़ जाय परन्तु टूटे नहीं। परिव्राजक (सन्यासी) चिन्ता रहित हो और काम सुख को छोड़कर इस बन्धन को तोड़ देते हैं।

ये रागरत्तानुपतन्ति सोतं
सयं कतं मक्कटको व जालं।
एतं पि छेत्वान वजन्ति धीरा
अनपेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाय ॥ १४ ॥

१४—जो राग में रत हैं वह धारा में इस प्रकार बह जाते हैं जैसे मकड़ी अपने ही जाल में। धीर लोग इसको काट कर चिन्ता और शोक रहित हो जाते हैं।

मुञ्च पुरे मुञ्च पच्छतो मज्झे मुञ्च भवस्स पारगू।
सब्बत्थ विमुत्तमानसो न पुन जातिजरं उपेहिसि ॥ १५ ॥

१५—भवसागर से पार जाने के लिये आगे, पीछे और मध्य को छोड़ दे। जब सब प्रकार से मुक्त हो जायगा तो फिर जन्म और बुढ़ापे में न फँसेगा।

वितक्कपमथितस्स जन्तुनो तिब्बरागस्स सुभानुपस्सिनो।
भिय्यो तण्हा पवड्ढति एस खो दल्हं करोति बंधनं ॥१६॥

१६—तर्क वितर्क (संशय) से पीड़ित, तीव्र राग में फँसे हुये और सुख के अभिलाषी प्राणी की तृष्णा बढ़ जाती है और उसका बंधन दृढ़ हो जाता है।

वितक्कूपसमे च यो रतो असुभं भावयति सदा सतो।
एस खो व्यन्तिकाहिति एस च्छेच्छति मारबन्धनं ॥१७॥

१७—जो पुरुष संशय के उपशम (बुझाने) में रत है। मूर्खों का पीछा नहीं करता वह मार के बन्धन को न केवल दूर ही करता किन्तु उसको छिन्न भिन्न कर देता है।

निट्ठं गतो असन्तासी वीततण्हो अनङ्गणो।
अच्छिद भवसल्लानि अन्तिमोऽयं समुस्सयो॥ १८॥

१८—जो उद्देश्य को पहुँच गया, जो अभय होगया जिसकी तृष्णा जाती रही, और जिसका दोष निवृत्त होगया, जिसने जीवन के कण्टकों को काट डाला उसका यह अन्तिम जीवन है अर्थात वह फिर जन्म न लेगा।

वीततण्हो अनादानो निरुत्तिपदकोविदो।
अक्खरानं सन्निपातं जञ्ञा पुब्बापरानि च।
स वे अन्तिमसारीरो महापञ्ञो महापुरिसो ति वुच्चति॥१९॥

१९—जिसकी तृष्णा जाती रही, जिसमें राग नहीं है जो पद (शब्द) और उसकी निरुक्ति (अर्थ) जानता है। जो अक्षरों के क्रम को जानता है। वह महापुण्यात्मा और महापुरुष कहलाता है। यह उसका अन्तिम जीवन है। अर्थात् उसकी मुक्ति हो जायगी।

सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि
सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो
सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं॥ २०॥

२०—मैंने सबको जीत लिया, सब जान लिया, सब धर्मों से छूट गया। सबको त्याग दिया। सब तृष्णाओं से मुक्त होगया। मैंने अपने को जान लिया। अब मैं किसे सिखाऊं।

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति
सब्बरसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बरतिं धम्मरती जिनाति
तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति॥ २१॥

२१—सब दानों में धर्म का दान बढ़कर है। सब रसों में धर्मरस बढ़कर है। सब सुखों में धर्म का सुख बढ़कर है। तृष्णा के भय से सब दुख दूर होते हैं।

हनन्ति भोगा दुम्मेधं नो चे पारगवेसिनो।
भोगतण्हाय दुम्मेधो हन्ति अञ्ञे व अत्तनं॥ २२॥

२३—भोग मूर्खों का नाश कर देते हैं यदि वह परलोक पर दृष्टि नहीं रखते। तृष्णा के भोग से मूर्ख शत्रु के समान अपने को मार डालता है।

तिणदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु दिन्नं होति महप्फलं॥ २३॥

२३—खेत के दोष तृण हैं। मनुष्यों का दोष राग है। इसलिये वीतराग पुरुष को दान देने से महाफल होता है।

तिणदोसानि खेत्तानि दोसदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतदोसेसु दिन्नं होति महप्फलं॥ २४॥

२४—खेत के दोष तृण हैं। मनुष्यों का दोष द्वेष है। इसलिये उनको दान देने से महाफल होता है जो द्वेष रहित हैं।

तिणदोसानि खेत्तानि मोहदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतमोहेसु दिन्नं होति महप्फलं॥ २५॥

२५—खेत के दोष तृण हैं। मनुष्यों का दोष मोह है। इसलिये मोह से रहित लोगों को दान देने से महाफल होता है।

तिणदोसानि खेत्तानि इच्छादोसा अयं पजा।
तस्मा हि विगतिच्छेसु दिन्नं होति महप्फलं॥ २६॥

२६—खेत के दोष तृण है और मनुष्यों का दोष इच्छा है। इसलिये इच्छा रहित पुरुषों को दान देने से महाफल होता है।

इति तण्हावग्गो चतुवीसतिमो
यह चौबीसवाँ तृष्णा वर्ग हुआ

भिक्खुवग्गो पञ्चवीसतिमो

पच्चीसवां अध्याय भिक्षुवर्ग

चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो ।
घाणेन संवरो साधु साधु जिव्हाय संवरो ॥ १ ॥

१—आंख का वश में करना अच्छा । कान का वश में करना अच्छा । नाक का वश में करना अच्छा । जीभ का वश में करना अच्छा ।

कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो ।
मनसा संवरो साधु साधु सब्बत्थ संवरो ।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खु सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥ २ ॥

२—शरीर का वश में करना अच्छा । वाणी का वश में करना अच्छा । मन का वश में करना अच्छा । सब चीजों का वश में करना अच्छा । भिक्षु सब चीजों को वश में करके सब दुखों से छूट जाता है ।

हत्थसंयतो पादसंयत
वाचाय संयतो संयतुत्तमो ।
अज्झत्तरतो समाहितो
एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुं ॥ ३ ॥

३—संयमी पुरुषों में वह सब से अच्छा है जिसने हाथ, पांव, और वाणी को संयम में किया है। मैं उसी को भिक्षु कहता हूं जिसका अन्तरात्मा सुखी है। जो समाहित है। जो एकान्त मैत्री और सन्तुष्ट है।

यो मुखसंयतो भिक्खु मन्तभाणी अनुद्धतो।
अत्थं धम्मं च दीपेति मधुरं तस्स भासितं ॥ ४ ॥

४—जिस भिक्षु का मुख उसके वश में है और जो थोड़ा बोलता है। जो उद्धत नहीं और धर्म का प्रचार करता है उसी का भाषण मधुर होता है।

धम्मारामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयं।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु सद्धम्मा न परिहायति ॥ ५ ॥

५—जो धर्म को मानता और धर्म मे सुख लाभ करता तथा धर्म्म का विचार करता है और धर्म का अनुसरण करता है वह भिक्षु धर्म से पतित नहीं होगा।

सलाभं नातिमञ्ञेय्य नाञ्ञेसं पिहयं चरे।
अञ्ञेसं पिहयं भिक्खु समाधिं नाधिगच्छति ॥ ६ ॥

६—अपने लाभ का तिरस्कार न करे और न दूसरे के लाभ का डाह करे। जो भिक्षु पराये लाभ का डाह करता है उसको समाधि की प्राप्ति नहीं होती।

अप्पलाभोऽपि चे भिक्खु सलाभं नातिमञ्ञति ।
तं वे देवा पसंसन्ति सुद्धाजीविं अतन्दितं ॥ ७ ॥

७—थोड़ा लाभ होने पर भी जो भिक्षु उस अपने लाभ का तिरस्कार नहीं करता, जिसका जीवन शुद्ध है और जो आलसी नहीं उसकी देवता भी प्रशंसा करते हैं ।

सब्बसो नामरूपस्मिं यस्स नत्थि ममायितं ।
असता च न सोचति स वे भिक्खूति वुच्चति ॥ ८ ॥

८—जो किसी नाम और रूप में ममता नहीं करता और जो न रहे उसका सोच नहीं करता वही सच्चा भिक्षु है ।

मेत्ताविहारी यो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने ।
अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं ॥ ९ ॥

९—जो भिक्षु दयावान है और बुद्ध के शासन में प्रसन्न है वह शान्तपद को प्राप्त होता है और उसकी इच्छायें समाप्त हो जाती हैं ।

सिञ्च भिक्खु इमं नावं सित्ता ते लहुमेस्सति ।
छेत्वा रागं च दोसं च ततो निब्बाणमेहिसि ॥ १० ॥

१०—हे भिक्षु ! इस नाव को हलका करदे तब जल्दी जल्दी चलेगी । राग और द्वेष को छोड़कर ही तू निर्वाण पायेगा ।

पञ्च छिन्दे पञ्च जहे पञ्च चुत्तरि भावये ।
पञ्चसङ्गातिगो भिक्खु ओघतिण्णो ति वुच्चति ॥ ११ ॥

११—पांच को काट, पांच को छोड़ और उनके स्थान में पांच को ले। जो पांचों बुराइयों से पवित्र हो गया उसी को तरा हुआ समझो।

झाय भिक्खु मा च पमादो
मा ते कामगुणे भमस्सु चित्तं।
मा लोहगुळं गिली पमत्तो
मा कन्दि दुक्खमिदं ति डय्हमानो ॥ १२ ॥

१२—हे भिक्षु! ध्यान कर प्रमाद मत कर। तेरा चित्त कामनाओं में न भ्रमे। तुझे प्रमाद के कारण गले में लोहे के गोले न निगलना पड़े। और जलते समय तू यह कह कर न चिल्लावे "यह दुःख है।"

नत्थि झानं अपञ्ञस्स पञ्ञा नत्थि अज्झायतो।
यम्हि झानं च पञ्ञा च स वे निब्बाणसन्तिके ॥१३॥

१३—विना ध्यान के ज्ञान नहीं। विना ज्ञान के ध्यान नहीं। वही निर्वाण के निकट है जिसमें ध्यान और ज्ञान दोनों हों।

सुञ्ञागारं पविट्ठस्स सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
अमानुसी रती होति सम्मा धम्मं विपस्सतो ॥ १४ ॥

१४—जो भिक्षु एकान्त सेवी और शान्त चित्त है उसे अमानुषी अर्थात दैवी सुख होता है और वह धर्म्म को भली प्रकार देख सकता है।

यतो यतो सम्मसति खन्धानं उदयब्बयं ।
लभति पीतिपामोज्जं अमतं तं विजानतं ॥ १५ ॥

१५—जब जब वह स्कन्धों (शरीरों) के उदय और विनाश पर विचार करता है तब उसे वह आनन्द प्राप्त होता है जो उन को होता है जो अमृत पद को जानते हैं ।

तत्रायमादि भवति इध पञ्ञस्सं भिक्खुनो ।
इन्द्रियगुत्ती सन्तुट्ठी पातिमोक्खे च संवरो ।
मित्ते भजस्सु कल्याणे सुद्धाजीवे अतन्दिते ॥ १६ ॥

१६—इन्द्रियों को वश में रखने वाले, सन्तुष्ट, धर्मानुयायी, भिक्षु के लिये यह आरम्भ है । ऐसे उत्तम मित्रों को बना जो कल्याण कारण, शुद्ध जीवन वाले तथा सुस्त न हों ।

पटिसन्थारवुत्तस्स आचारकुसलो सिया ।
ततो पामोज्जबहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्सति ॥ १७ ॥

१७—दान करना और आचार कुशल होना चाहिये, तब सुख से आधिक्य के कारण दुखों का अन्त होगा ।

वस्सिका विय पुप्फानि मद्दवानि पमुञ्चति ।
एवं रागं च दोसं च विप्पमुञ्चेथ भिक्खवो ॥ १८ ॥

१८—जिस प्रकार वासिका अपने कुम्हलाये हुये फूलों को झाड़ देती है इसी प्रकार हे भिक्षु ! तुम राग और द्वेष को छोड़ दो ।

सन्तकायो सन्तवाचो सन्तमनो सुसमाहितो ।
वन्तलोकामिसो भिक्खु उपसन्तो ति वुच्चति ॥ १९ ॥

१९—वही भिक्षु उपशांत है जिसके शरीर, वाणी और मन वश में हैं। जो घबराया नहीं है और जिसने दुनिया के लालचों को अस्वीकृत कर दिया है।

अत्तना चोदयत्तानं पटिमासे अत्तमत्तना ।
सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खु विहाहिसि ॥ २० ॥

२०—अपने को अपने आप उठा। अपनी आप परीक्षा कर। इस प्रकार हे भिक्षु ! तू अपनी आप रक्षा करता हुआ और विचार-शील होकर सुखलाभ करेगा।

अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति ।
तस्मा संयमयत्तानं अस्सं भद्रं व वाणिजो ॥ २१ ॥

२१—आप ही अपना स्वामी है। अपनी गति अपने तक ही है। इसलिये अपने को संयम में रख जैसे बनिया अपने घोड़े को रखता है।

पामोज्जबहुलो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने ।
अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं ॥ २२ ॥

२२—बहुत आनन्द युक्त और बुद्ध के शासन में प्रसन्न भिक्षु, शान्ति, इच्छाओं के नाश तथा सुख को प्राप्त करता है।

यो हवे दहरो भिक्खु युञ्जति बुद्धसासने ।
सो इमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो व चन्दिमा ॥ २३ ॥

२३—जो युवक भिक्षु बुद्ध के शासन में योग देता है वह इस लोक को इस प्रकार प्रकाशित करता है जैसे बादलों से मुक्त चन्द्रमा ।

इति भिक्खु वग्गो पञ्चवीसतिमो ।
यह पचीसवां भिक्षुवर्ग हुआ ।

ब्राह्मणवग्गो छब्बीसतिमो

छब्बीसवां अध्याय ब्राह्मणवर्ग

छिन्द सोतं परक्कम्म कामे पनुद ब्राह्मण।
सङ्खारानं खयं ञत्वा अकतञ्ञूसि ब्राह्मण॥ १॥

१—हे ब्राह्मण! इच्छाओं की धारा को बन्द कर। कामनाओं को हटा। हे ब्राह्मण! उत्पन्न हुई वस्तुओं के क्षय को जान कर तू अकृत अर्थात् नित्य वस्तु का ज्ञान उपलब्ध करेगा।

यदा द्वयेसु धम्मेसु पारगू होति ब्राह्मणो।
अथस्स सब्बे संयोगा अत्थं गच्छन्ति जानतो॥ २॥

२—जब ब्राह्मण दोनों धर्मों में पार हो जाय तो उस ज्ञानी के सभी बन्धन छूट जाते हैं।

यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विज्जति।
वीतद्दरं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ३॥

३—जिसका न यह पार है न वह पार। पार और अपार दोनों नहीं उस निडर और बन्धन रहित पुरुष को मैं ब्राह्मण कहता हूं।

झायिं विरजमासीनं कतकिच्चं अनासवं।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ४॥

४—जो ध्यानी, दोष रहित, कृत कार्य्य, विषय रहित और उत्तम उद्देश को पाने वाला है उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूं।

दिवा तपति आदिच्चो रत्तिं आभाति चन्दिमा।
सन्नद्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बमहोरत्तं बुद्धो तपति तेजसा ॥ ५ ॥

५—सूर्य्य दिन में चमकता है और चन्द्रमा रात में। क्षत्रिय अपने शस्त्र के साथ चमकता है और ब्राह्मण ध्यान के साथ। परन्तु बुद्ध अपने तेज के साथ रात दिन चमकता है।

बाहितपापो ति ब्राह्मणो
समचरिया समणो ति वुच्चति।
पब्बाजयमत्तनो मलं
तस्मा पब्बजितो ति वुच्चति ॥ ६ ॥

६—पाप रहित को ब्राह्मण कहते हैं। शान्त आचरण वाले को श्रमण कहते हैं। जिसने अपने मलों को दूर कर दिया है उसे परिव्राजक कहते हैं।

न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नास्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो।
धी ब्राह्मणस्स हन्तारं ततो धी यस्स मुञ्चति ॥ ७ ॥

७—किसी ब्राह्मण पर प्रहार न करो। न कोई ब्राह्मण किसी प्रहार करने वाले पर प्रहार करे। धिक्कार है उसको जो ब्राह्मण को मारे और धिक्कार है उसको जो उस मारने वाले को मारे।

न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि सेय्यो
यदा निसेधो मनसो पियेहि।
यतो यतो हिंसमनो निवत्तति
ततो ततो सम्मतिमेव दुक्खं ॥ ८ ॥

८—यह ब्राह्मण के लिये कम श्रेयस्कर नहीं है यदि वह अपने मन को जीवन के सुखों से हटाले। जब हिंसा का भाव दूर हो जायगा तो दुख भी कम हो जायगा।

यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं।
संवुतं तीहि ठानेहि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ९ ॥

९—जो शरीर, वाणी और मन से बुरा काम नहीं करता। जो इन तीन बातो में सुरक्षित है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

यम्हा धम्मं विजानेय्य सम्मासंबुद्धदेसितं।
सक्कचं तं नमस्सेय्य अग्गिहुत्तं व ब्राह्मणो ॥ १० ॥

१०—जब बुद्ध का बताया हुआ धर्म समझ में आ गया तो उस पर श्रद्धा से आचरण करे जैसे ब्राह्मण अग्नि होत्र को करता है।

न जटाहि न गोत्तेन न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुखी सो च ब्राह्मणो ॥११॥

११—कोई जटा, गोत्र या जाति से ब्राह्मण नहीं होता। जिस में सत्य और धर्म है वही सुखी और ब्राह्मण है।

किं ते जटाहि दुम्मेध किं ते अजिन साटिया ।
अब्भन्तरं ते गहनं बाहिरं परिमज्जसि ॥ १२ ॥

१२—हे मूर्ख ! जटा से क्या लाभ और बकरी के चर्म्म से क्या लाभ ? तेरा भीतर का तो गन्दा है । बाहर धोने से क्या होता है ?

पंसुकूलधरं जन्तुं किसं धमनिसन्थतं ।
एकं वनस्मिं झायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १३ ॥

१३—धूलीरमाये, दुबले और हड्डी निकले ये वन में रहने वाले और ध्यानी को मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसंभवं ।
भोवादी नाम सो होति सचे होति सकिंचनो ।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १४ ॥

१४—मैं किसी को उसकी योनि अथवा माता के कारण ब्राह्मण नहीं कहता चाहे उसका लोग सन्मान ही क्यों न करें और चाहे वह धन वान ही क्यों न हो । मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जो निर्धन और बन्धनों से मुक्त है ।

सब्बसंयोजनं छेत्वा यो वे न परितस्सति ।
सङ्गातिगं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १५ ॥

१५—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जो सब बन्धनों को काट कर कभी भय नहीं करता, जो स्वतंत्र और मुक्त है ।

छेत्वा नन्दिं वरत्तं च सन्दानं सहनुक्कमं ।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १६ ॥

१६—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जिसने तस्मों को तोड़ डाला जंजीर को कड़ियों सहित नष्ट कर दिया, चटखनी को हटा दिया (अर्थात् सब प्रकार से स्वतंत्र हो गया) और बुद्ध हो गया।

अक्कोसं वधबन्धं च अदुट्ठो यो तितिक्खति ।
खन्तीबलं बलानीकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १७ ॥

१७—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जिसने कुछ अपराध नहीं किया फिर भी गाली, हानि तथा दण्ड को शान्ति के साथ सह लेता है। जिसमें शान्ति बल है और सेना के समान शक्ति है।

अक्कोधनं वतवन्तं सीलवन्तं अनुस्सुतं ।
दन्तं अन्तिमसारीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १८ ॥

१८—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जो क्रोध रहित, कर्त्तव्य परायण, शीलवन्त, इच्छा रहित, दमनयुक्त, और अन्तिम शरीर वाला है। (अर्थात् मुक्ति के निकट है।)

वारि पोक्खरपत्तेव आरग्गेरिव सासपो ।
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १९ ॥

१९—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जो सुखों में लिप्त नहीं जैसे कमल पानी में लिप्त नहीं होता या जैसे सरसों सुई की नोक से लिप्त नहीं होती।

यो दुक्खस्स पजानाति इधेव खयमत्तनो ।
पन्नभारं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २० ॥

२०—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जो इसी लोक में दुःख के अन्त को जानता है जिसने अपने भार को उतार कर रख दिया, जो बन्धनों से रहित है।

गम्भीरपञ्ञं मेधाविं मग्गामग्गस्स कोविदं ।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २१ ॥

२१—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जिसका ज्ञान गहरा है, जो मेधावी है, जो उचित और अनुचित मार्ग को जानता है और जिसने अपने उद्देश्य की प्राप्ति करली है।

असंसट्ठं गहट्ठेहि अनागारेहि चूभयं ।
अनोकसारिं अप्पिच्छं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २२ ॥

२२—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो गृहस्थों और भिक्षुओं दोनों से अलग रहता है जो घर घर नहीं फिरता और जिसकी इच्छायें अल्प हैं।

निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च ।
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २३ ॥

२३—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जिसने दण्डों को उठा कर रख दिया है जो स्थावर या जंगम किसी प्राणी को न हानि पहुँ-चाता है और न मारता है।

अविरुद्धं विरुद्धेसु अत्तदण्डेसु निब्बुतं ।
सादानेसु अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ २४ ॥

२४—जो विरुद्धों से विरुद्ध नहीं, उद्दण्डों से शान्त और दान लेने वालों में दान न लेने वाला है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

यस्स रागो च दोसो च मानो मक्खो च पातितो ।
सासपोरिव आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ २५ ॥

२५—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जिसने राग, द्वेष, मान, मत्सरता सब को इस प्रकार हटा दिया है जैसे सुई की नोंक से सरसों ।

अकक्कसं विञ्ञापनि गिरं सच्चं उदीरये ।
याय नाभिसजे किञ्चि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ २६ ॥

२६—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो कर्कशतारहित, शिक्षायुक्त और सच्ची वाणी बोलता है जिससे किसी का दिल न दुखे ।

योध दीघं व रस्सं वा अणुम् थूलं सुभासुभं ।
लोके अदिन्नं नादियति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ २७ ॥

२७—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो बिना दिये हुये किसी चीज को नहीं लेता चाहे वह लम्बी हो, चाहे छोटी, चाहे मोटी, चाहे पतली, चाहे शुभ, चाहे अशुभ ।

आसा यस्स न विज्जन्ति अस्मिं लोके परम्हि च
निरासयं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २८ ॥

२८—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो इस लोक और परलोक दोनों के लिये आशा नहीं रखता। जो विषय और बन्धनों से रहित है।

यस्सालया न विज्जन्ति अञ्ञाय अकथंकथी।
अमतोगधं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २९ ॥

२९—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जिसमें विषय-वासना नहीं है जिसने सचाई को जान लिया। जिसके संशय छिन्न भिन्न हो गये। जिसने अमृत पद के मार्ग को जान लिया और उसे ग्रहण कर लिया।

योध पुञ्ञं च पापं च उभो सङ्गं उपच्चगा।
असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ ३० ॥

३०—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो पुण्य और पाप के द्वन्द्वों से अलग हो गया। जो शोकरहित, पवित्र, और शुद्ध है।

चन्दं व विमलं सुद्धं विप्पसन्नमनाविलं।
नन्दीभवपरिक्खीणम् तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ ३१ ॥

३१—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो विमल चाँद के समान शुद्ध, जो गम्भीर और प्रसन्न चित्त है जिसने संसार की इच्छाओं को हटा दिया है।

यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा।
तिण्णो पारगतो झायी अनेजो अकथंकथी ॥

अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ ३२ ॥

३२—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जिसने दुर्गम कीचड़ का मार्ग अर्थात् संसार और मोह को पार कर लिया। जो इसमें तैर कर उस पार पहुँच गया। जो ध्यानी है, कपटी नहीं, संदेहों से मुक्त और निवृत्त है।

योध कामे पहत्वान अनागारो परिब्बजे।
कामभवपरिक्खीणम् तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ ३३ ॥

३३—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो इस जीवन में कामना को छोड़कर गृहस्थ से परिव्राजक हो जाता है। जिसने कामनाओं को और फिर जन्म लेने की इच्छाओं को दूर कर दिया है।

योध तण्हं पहत्वान अनागारो परिब्बजे।
तण्हाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ ३४ ॥

३४—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो इस जीवन में तृष्णाओं को छोड़कर गृहस्थ से परिव्राजक हो गया है। जिसने अगले जन्म की तृष्णा को छोड़ दिया है।

हित्वा मानुसकं योगं दिब्बं योगं उपच्चगा।
सब्बयोगविसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३५ ॥

३५—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जिसने मनुष्य सम्बन्धी सुखों को पीछे छोड़ दिया है और दिव्य सुखों से आगे निकल गया है और सब प्रकार की सुख कामनाओं के झगड़े से पाक है।

हित्वा रतिं च अरतिं च सीतिभूतं निरूपधिं ।
सब्बलोकाभिभुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३६ ॥

३६—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जिसने सुख और दुख को छोड़ दिया है, जो शांत और उपाधि रहित है। जिसने सब लोकों को जीत लिया जो वीर है।

चुतिं यो वेदि सत्तानं उपपत्तिं च सब्बसो ।
असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३७ ॥

३७—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो प्राणियों के नाश और आवागमन को जानता है। जो आसक्त नहीं है जो सुगत और बुद्ध है।

यस्स गतिं न जानन्ति देवा गन्धब्बमानुसा ।
खीणासवं अरहन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३८ ॥

३८—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जिसकी गति को देवता, गन्धर्व और आदमी नहीं समझते जिसकी इच्छायें क्षीण हो गई और जो अरहत हो गया।

यस्स पुरे च पच्छा च मज्झे च नत्थि किञ्चनं ।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ ३९ ॥

३९—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो आगे, पीछे और बीच में किसी को अपना नहीं कहता। जो निर्धन और संसार के मोह से मुक्त है।

उसभं पवरं वीरं महेसिं विजिताविनं ।
अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ ४० ॥

४०—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो नेता, प्रबल, वीर, महर्षि विजितकाम, पवित्र और बुद्ध है ।

पुब्बेनिवासं यो वेदि सग्गापायं च पस्सति ।
अथो जातिक्खयं पत्तो अभिञ्ञावोसितो मुनि ।
सब्बवोसितवोसानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ ४१ ॥

४१—मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ जो अपने पूर्व जन्म को जानता है, जो स्वर्ग और नरक को देखता है । जो जन्म के क्षय को जानता है, जो मुनि है, जिसका ज्ञान पूर्ण है । जो सब प्रकार से पूर्ण है ।

इति ब्राह्मणवग्गो छब्बीसतिमो ।

यह छब्बीसवां ब्राह्मणवर्ग हुआ ।

इति धम्मपदं निट्ठितं ।

यह धम्मपद समाप्त हुआ ।